वन्दे श्री गुरू तारणम्

अध्यात्म आराधना

श्री तारण तरण अध्यात्म भाव पूजा

(शुद्ध षट् कर्म)

रचयिता

ब्रह्मचारी बसन्त

वन्दे श्री गुरू तारणम्

अध्यात्म आराधना

श्री तारण तरण अध्यात्म भाव पूजा

(शुद्ध षट्कर्म)

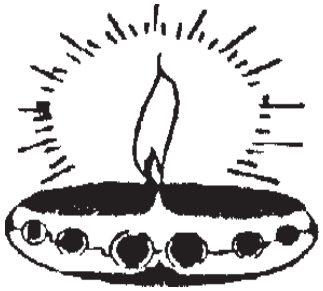

रचयिता

ब्रह्मचारी बसन्त

प्रकाशक

तारण तरण श्री संघ

श्री तारण तरण अध्यात्म प्रचार योजना केन्द्र

६१, मंगलवारा, भोपाल (म.प्र.)

प्रथमावृत्ति	२०००	जबलपुर
द्वितीयावृत्ति	७०००	गंजबासौदा
तृतीयावृत्ति	२०००	छिन्दवाड़ा
चतुर्थावृत्ति	२५००	भोपाल
पंचमावृत्ति	४०००	बरेली

सन् १९९९

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य – भाव पूजा भक्ति

प्राप्ति स्थल –

१. प्रवीण जैन, मंत्री
श्री तारण तरण अध्यात्म प्रचार योजना केन्द्र,
६१, मंगलवारा, भोपाल (म.प्र.) – ४६२००१

२. विजय मोही, मंत्री
ब्रम्हानंद आश्रम, पिपरिया,
जिला – होशंगाबाद (म.प्र.) – ४६१७७५

अक्षर संयोजन एवं अभिकल्पन :– एडवांस्ड लाईन,
नानक अपार्टमेंट, कस्तूरबा नगर, भोपाल. फोन: २७४२८६

मुद्रक :– एम.के. ऑफसेट, ए–१२१, कस्तूरबा नगर, भोपाल.
फोन: ५८८५७९, ९८२७०५८८५७

प्रकाशकीय

आध्यात्मिक क्रांति के जनक आचार्य प्रवर श्री मद् जिन तारण तरण मण्डलाचार्य जी महाराज जन-जन में अध्यात्म चेतना के प्राण फूंकने वाले महान वीतरागी संत थे। निष्पक्ष भाव से सत्य धर्म का स्वरूप बताने वाले, अध्यात्म की अलख जगाने वाले ऐसे निस्पृह संत विरले ही होते हैं, उनके द्वारा सृजित चौदह ग्रंथ युगों-युगों तक जग जीवों का मार्गदर्शन करते रहेंगे। पूज्य गुरूदेव की वाणी में संसार के मानव मात्र के लिए आत्म कल्याण करने, मुक्ति को प्राप्त करने का मंगल मय संदेश है।

पूज्य गुरूदेव की वाणी को जन-जन में प्रचार करने हेतु गुरूदेव के प्रति समर्पित साधक श्री संघ, आत्म निष्ठ साधक पूज्य श्री स्वामी ज्ञानानंद जी महाराज के मार्गदर्शन में अपनी आत्म साधना के मार्ग पर चलते हुए विभिन्न आयामों के माध्यम से सद्गुरू की वाणी को संपूर्ण देश में प्रचार-प्रसार करने में संलग्न हैं। साधक श्री संघ द्वारा निस्पृह वृत्ति पूर्वक अखिल भारतीय तारण समाज एवं देश भर में किये जा रहे अध्यात्म धर्म प्रभावना कार्यों की एक झलक इस प्रकार है -

१. सन् १९८० से ८४ के बीच साधकों द्वारा समाज के विभिन्न अंचलों में अनेक समूहों ने भ्रमण कर सामाजिक जागरण और धर्म प्रभावना का बीजारोपण किया।

२. सन् १९८४ में बरेली (म.प्र.) में आयोजित श्री मालारोहण शिविर में दिनांक ७ फरवरी ८४ बसंत पंचमी को पू. श्री की दीक्षा हुई तथा अनेक भव्यात्माओं ने ब्रह्मचर्य व्रत लेकर प्रभावना में सहयोग करने का संकल्प किया। इसी वर्ष पू. ब्र. श्री सुशीला बहिन जी की भी दीक्षा हुई।

३. सन् १९८५ में पूज्य ब्र. श्री बसंत जी महाराज एवं पू. ब्र. श्री सहजानंद जी महाराज (बाबाजी) ने जन जागरण अभियान के अंतर्गत समाज के प्रत्येक नगर और गांव-गांव जाकर सामाजिक जागरण और धर्म प्रभावना की, इससे अनेक उपलब्धियां हुईं। इसी वर्ष पिपरिया में ब्रह्मानंद आश्रम की स्थापना हुई।

४. वर्ष १९८६ में भ्रमण के साथ ही श्री निसई जी तीर्थ क्षेत्र पर चौदह ग्रंथों का अत्यंत दुर्लभ मूल पाठ संपादन कार्य सम्पादित किया गया। इस कार्य हेतु ब्र. श्री बसंत जी द्वारा महाराष्ट्र से विक्रम संवत् १५८५ से १६०० तक की लगभग २० हस्तलिखित, चौदह ग्रंथों की प्रतियां फैजपुर महाराष्ट्र से लाई गईं थीं, पश्चात् संवत् १५७२ की ममल पाहुड़ और तीन बत्तीसी की दुर्लभ प्रति भी प्राप्त हुई थी , जो प्रतियां श्री निसई जी में ही सुरक्षित हैं।

५. वर्ष १९८७ में श्री सेमरखेड़ी जी में दिनांक ३ फरवरी ८७ बसंत पंचमी पर ब्र. बसन्त जी की दीक्षा हुई और सन् ८८ में भ्रमण तथा १९८९ में राष्ट्रीय स्तर पर तारण तरण अध्यात्म ध्वज प्रवर्तन का संपूर्ण समाज में भ्रमण और गांव-गांव, नगर-नगर में पालकी जी महोत्सव, सामाजिक संगठन, प्रभावना आदि अनेक शुभ कार्य संपन्न हुए। सन् १९९० में भी भ्रमण द्वारा गुरूवाणी प्रचार चलता रहा।

६. सन् १९९१ से ९६ तक पू. ब्र. श्री बसंत जी महाराज ने संपूर्ण देश में भ्रमण कर भारत वर्ष में दिगंबर-श्वेताम्बर, जैन-अजैन सभी वर्गों में गुरू तारण वाणी का शंखनाद किया, जिससे संपूर्ण भारत में तारण समाज की पहिचान बनी।

७. सन् १९९१ में जबलपुर में ४९ दिवसीय पाठ, वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव संपन्न हुआ तथा इसी अवसर पर ब्र. श्री स्वरूपानंद जी महाराज की दीक्षा हुई।

८. वर्ष ९६ में गंजबासौदा में ''तारण की जीवन ज्योति'' का वांचन, श्री संघ की स्थापना एवं दि. ७.१.९६ रविवार को ब्र. श्री आत्मानंद जी की दीक्षा, ब्र. मुन्नी बहिन जी का ब्रह्मचर्य व्रत तथा अन्य भव्य जीवों द्वारा ब्रह्मचर्य व्रत नियम संयम लिए गये, पश्चात् लगभग २०० श्रावक–श्राविकाओं का संघ पद यात्रा पूर्वक श्री सेमरखेड़ी जी पहुंचा वह अभूतपूर्व अवसर था।

९. पूज्य श्री के सानिध्य में ब्र. नेमी जी की प्रेरणा से बाल ब्र. श्री बसन्त जी महाराज द्वारा–बरेली, सिलवानी, गंजबासौदा, जबलपुर, सेमरखेड़ी जी में १४ ग्रंथों के ४९ दिवसीय पाठ किये गये, जिससे गुरूवाणी की महिमा प्रभावना में वृद्धि हुई, तथा साधकों के, वर्षों से विभिन्न स्थानों पर हो रहे वर्षावास से अनेक उपलब्धियां हुईं हैं। विगत वर्ष ९८ में श्री संघ के सेमरखेड़ी जी वर्षावास से हुई उपलब्धि आज भी चर्चा प्रभावना का विषय बना हुआ है, जिसमें १४ ग्रंथों का ४९ दिवसीय पाठ हुआ और जीवन ज्योति वांचन समापन अवसर पर दिनांक ५.९.९८ अनंत चतुर्दशी को पूज्य श्री ज्ञानानंद जी महाराज ने दसवीं प्रतिमा की दीक्षा ली तथा ब्र. सहजानंद जी एवं ब्र. शांतानंद जी की सातवीं प्रतिमा की दीक्षा हुई और १०० भव्य जीवों ने व्रत नियम संयम लिए,जागरण का वह अपूर्व अवसर चिरस्मरणीय रहेगा।

१०. इसके पूर्व सन् १९९७ में साधकों का देशव्यापी अध्यात्म चक्र भ्रमण कार्यक्रम सम्पन्न हुआ और वर्ष ९८ में संपूर्ण समाज में ''संस्कार शिविरों'' के आयोजन से सामाजिक परिवेश

में अपूर्व क्रांतिकारी परिवर्तन, संगठन, प्रभावना और जागरण हुआ है।

११. सन् १९८९ में ध्वज प्रवर्तन के समय बा. ब्र. श्री सरला जी एवं बा. ब्र. श्री ऊषा जी ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत लिया तथा सन् १९९६ में होशंगाबाद में बाल ब्र. नंद श्री (रचना) ने ब्रह्मचर्य व्रत लेकर अपना जीवन धर्म के लिए समर्पित किया।

१२. वर्ष ९१ से ९८ के बीच पूज्य ब्र. श्री बसंत जी के स्वरों में भजन, फूलना, मालारोहण, तत्वार्थ सूत्र, देव गुरू शास्त्र पूजा, चौदह ग्रंथ जयमाल, बारह भावना आदि के मधुर कैसेट बनाये गये जो पूरे देश में प्रभावना के साधन बने हैं।

१३. वर्ष ९९ में तारण तरण अध्यात्म क्रांति जन जागरण अभियान के तहत साधक बंधु एवं सभी ब्रह्मचारिणी बहिनों ने नगर–नगर, गांव–गांव जाकर संपूर्ण समाज में अध्यात्म और गुरूवाणी की अलख जगाई इससे सामाजिक धार्मिक सभी कार्य सहज ही बने हैं और अपूर्व धर्म प्रभावना हुई है।

१४. साहित्य के क्षेत्र में ब्रह्मानंद आश्रम से विगत वर्षों में साहित्य प्रकाशन होता रहा तथा ३१ मार्च ९९ को भोपाल में श्री तारण तरण अध्यात्म प्रचार योजना केन्द्र की स्थापना हुई और तीव्र गति से साहित्य प्रकाशन हो रहा है, इस कड़ी में पूज्य श्री गुरू महाराज के ग्रंथों की – पूज्य श्री द्वारा की गई तीन बत्तीसी की टीकाओं में से मालारोहण, पंडित पूजा की टीका, अध्यात्म अमृत (चौदह ग्रंथ जयमाल एवं भजन), अध्यात्म किरण (जैनागम १००८ प्रश्नोत्तर) तथा पूज्य ब्र. श्री बसंत जी महाराज द्वारा सृजित अध्यात्म आराधना देव गुरू शास्त्र पूजा का हजारों की संख्या में प्रकाशन हो चुका है। सारे देश में यह साहित्य धर्म की धूम

मचा रहा है। इसी श्रंखला में प्रस्तुत अध्यात्म आराधना, देव गुरू शास्त्र पूजा का पांचवां संस्करण ४ हजार प्रतियों का प्रकाशन तारण तरण श्री संघ द्वारा किया गया है, जिसका विवरण इस प्रकार है –

- १००० प्रतियां, बाल ब्र. श्री सरला जी, बा. ब्र. उषा जी, बा. ब्र. नंद श्री (रचना) एवं ब्र. श्री मुन्नी बहिन जी की ओर से ।
- १००० प्रतियां, ब्र. श्री भक्तावती जी (श्री सेठ प्रेमनारायण जी, राजीव कुमार, संजीव कुमार) बरेली की ओर से।
- १००० प्रतियां, श्री ब्र. सहजानन्द जी महाराज (बाबाजी), श्रीमती श्यामबाई, संतोष कुमार, अशोक कुमार, मिथिलेश कुमार, पं. राजेश कुमार शास्त्री घोड़ाडोंगरी की ओर से।
- १००० प्रति का प्रकाशन स्व. श्री गयाप्रसादजी (भजनानंद जी) की स्मृति में – श्रीमती कृष्णाबाई, चि. रूपेश कुमार जैन बरेली की ओर से कराया गया है।

इस कृति का आप व्यक्तिगत रूप से और सामूहिक रूप से प्रतिदिन स्वाध्याय, पाठ चिंतन–मनन कर अपने जीवन को मंगलमय बनायें, यही पवित्र भावना है।

ब्र. ऊषा जैन
संयोजिका
तारण तरण श्री संघ

ब्र. आत्मानंद
संयोजक
तारण तरण श्री संघ

दिनांक – ५ जून ९९

संत तारण तरण–एक आध्यात्मिक क्रांति

सोलहवीं शताब्दी का समय धर्म के नाम पर आडंबर, जड़वाद से पूर्ण हो रहा था, धर्म की चर्चा और क्रिया कांडमय आचरण तथा अज्ञान जनित मान्यताएँ धर्म के ठेकेदार जन मानस पर थोप रहे थे, ऐसे अज्ञान से परिपूर्ण अंधकार के बीच विक्रम सम्वत् १५०५ मिती अगहन सुदी सप्तमी को दैदीप्यमान प्रकाश पुंज के रूप में, ज्ञान का अनंत कोष संजोये हुए पूज्य गुरूदेव श्रीमद् जिन तारण तरण मंडलाचार्य जी महाराज का इस धरा पर जन्म हुआ। माता वीर श्री देवी, पिता श्री गढ़ाशाह जी एवं जन–जन का मन प्रमुदित हो उठा, हृदय कमल खिल गया, इस भावना से कि इस महान चेतना के द्वारा जगत के जीवों का उद्धार होगा। बचपन से ही श्री गुरू तारण स्वामी के विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न होने के लक्षण व्यक्त होने लगे थे, तदनुसार ११ वर्ष की बालवय में सम्यग्दर्शन, २१ वर्ष की किशोर अवस्था में ब्रह्मचर्य व्रत का संकल्प, ३० वर्ष की युवा अवस्था में ब्रह्मचर्य प्रतिमा एवं ६० वर्ष की आयु में निर्ग्रंथ दिगम्बर साधु पद की दीक्षा उनके उत्कृष्ट आत्म पुरूषार्थ का प्रतीक है। श्री गुरूदेव तारण स्वामी मंडलाचार्य पद से विभूषित थे। उनके संघ में ७ निर्ग्रंथ मुनिराज, ३६ आर्यिका माता जी, २३१ ब्रह्मचारिणी बहिनें, ६० व्रती प्रतिमाधारी श्रावक एवं १८ क्रियाओं का पालन करने वाले श्रावक लाखों की संख्या में थे, जिसमें जैन–अजैन सभी जातियों के लोग अध्यात्म साधना के लिए समर्पित हो गये थे।

श्री गुरू तारण तरण मंडलाचार्य जी महाराज ने १४ ग्रंथों की रचना की, जिनमें आगम अध्यात्मसाधना परक अनुभूतियों की विशेषता है। ६६ वर्ष ५ माह १५ दिन की आयु में उन्होंने मिती जेठ वदी छठ विक्रम सम्वत् १५७२ में श्री निसई जी मल्हारगढ़ क्षेत्र पर समाधि पूर्वक इस पार्थिव शरीर का त्याग कर सर्वार्थ सिद्धि को प्राप्त हुए। श्री गुरूदेव तारण स्वामी जी के ग्रंथों के आधार पर यह आध्यात्मिक पूजा बाल ब्र.श्री बसंत जी द्वारा संजोयी गई है, इसके स्वाध्याय से आपका जीवन मंगलमय बनें, ऐसी शुभ कामना है।

घोड़ाडोंगरी
दिनांक १५.१.९९

ब्र. सहजानन्द (बाबा जी)

अनुमोदना

आर्य संस्कृति में दो मूल धारायें अनादि से रही हैं - भेद भक्ति और अभेद भक्ति - जिसका संचालन वैदिक दर्शन और जैन दर्शन करता रहा है। परमात्मा को पर रूप में मानना उसकी वन्दना भक्ति पूजा करना उससे अपना कल्याण चाहना तथा परमात्मा को विश्व का कर्ता धर्ता नियन्ता मानना यह भेद भक्ति है, जो संसार में पुण्य को धर्म बताकर जीवों को पाप से छुड़ाती है। दूसरी ओर, परमात्मा को स्वस्वरूप में मानना कि ''मैं आत्मा स्वयं परमात्मा हूँ'' ऐसा अनुभूतियुत ज्ञान श्रद्धान होना और इसकी ही साधना-आराधना करना यह अभेद भक्ति है, जो जीव को संसार के अज्ञान जनित सुख-दुःख एवं जन्म-मरण से मुक्त करने वाली परम-सुख शान्ति आनन्द को देने वाली, मोक्ष की कारण है।

अध्यात्मवाद में जाति-पांति सम्प्रदाय का भेद-भाव नहीं होता, जो जीव आत्म कल्याण करना चाहते हैं उनके लिये अभेद भक्ति अनुकरणीय है। ज्ञान मार्ग से ही मुक्ति की प्राप्ति होती है, ज्ञानी की पूजा-भक्ति और आचरण कैसा होता है, इसे स्पष्ट करने के लिये सोलहवीं शताब्दी के आध्यात्मिक वीतरागी सन्त श्री जिन तारण स्वामी के ग्रंथ श्री ज्ञान समुच्चय सार, उपदेश शुद्ध सार जी ग्रंथों के आधार पर -देव गुरू शास्त्र पूजा को बाल ब्रम्हचारी श्री बसंत जी ने अपनी भाषा में संजोया है। जो स्व स्वरूप का ज्ञान-श्रद्धान कराने में अपूर्व सहयोगी है। प्रस्तुत देव, गुरू, शास्त्र की भाव पूजा को पढ़ने से हृदय गद्‌गद् हो जाता है। सभी आत्मार्थी भव्य-जीव इसके स्वाध्याय चिन्तन मनन से लाभान्वित हों और अध्यात्म दृष्टि बनाकर सच्चे मोक्षमार्गी (तारण पंथी) बनें ऐसी मंगल भावना है।

साधक निवास बरेली
दिनांक २०.८.९०

ब्र. ज्ञानानन्द

अपनी बात

परमानंद परम ज्योति:, चिदानन्द जिनात्मनं।
सुयं रूपं समं सुद्धं, विन्दस्थाने नमस्कृतं॥

जब तक सच्चेदेव-सच्चेगुरू-सच्चेशास्त्र-धर्म के स्वरूप को नहीं जाना जाता, तब तक जो भी पूजा-मान्यता है वह रूढ़िवाद-गृहीत मिथ्यात्व है। सच्चेदेव-गुरू-धर्म-शास्त्र का स्वरूप समझने से स्वयं को आत्म बोध होता है।

वीतरागी सन्त श्री गुरू तारण तरण मंडलाचार्य जी महाराज की साधना स्थली तपो-भूमि तीर्थाधिराज श्री सेमरखेड़ी जी क्षेत्र पर आत्मनिष्ठ साधक पूज्य श्री स्वामी ज्ञानानन्द जी महाराज के साथ एक माह साधना करने का सुयोग मिला, साधना आराधना के क्रम में पूज्य श्री की सत्प्रेरणा से यह देव, गुरू, शास्त्र पूजा की रचना सहज में हुई है।

सद्‌गुरू श्री जिन तारण स्वामी द्वारा विरचित श्री ज्ञान समुच्चय सार, उपदेश शुद्ध सार, श्रावकाचार जी ग्रन्थ की प्रारम्भिक देव, गुरू, शास्त्र सम्बंधी मंगलाचरण की गाथाओं के आधार पर अध्यात्म आराधना षट् आवश्यक और यह भाव पूजा लिखी गई है। सभी भव्य-जीव अपने आदर्श सच्चे देव, गुरू, धर्म की भाव पूजा मय आराधना करें और प्रतिदिन इसका पाठ कर यथार्थ वस्तु स्वरूप सहित सत्य का निर्णय करके इस अमूल्य मानव जीवन को सफल बनायें, आत्मा से परमात्मा बनें, इन्हीं मंगल भावनाओं सहित मुमुक्षु भव्यात्माओं के लिये समर्पित है।

वर्षावास गंज बासौदा
दिनांक २५.८.९०

ब्र. बसन्त

❋ तत्व मंगल ❋

देव को नमस्कार

तत्वं च नंद आनंद मउ, चेयननंद सहाउ ।
परम तत्व पद विंद पउ, नमियो सिद्ध सुभाउ ॥

गुरू को नमस्कार

गुरू उवएसिउ गुपित रूइ, गुपित न्यान सहकार।
तारण तरण समर्थ मुनि, गुरू संसार निवार ॥

धर्म को नमस्कार

धम्मु जु उत्तउ जिनवरहिं, अर्थति अर्थह जोउ।
भय विनास भवु जु मुनहु, ममल न्यान परलोउ॥

देव को, गुरू को, धर्म को नमस्कार।

❖ आत्म-आराधन ❖

मैं हूँ शुद्धात्मा, मैं हूँ शुद्धात्मा ।
मैं हूँ परमात्मा, मैं हूँ परमात्मा ॥

१. मेरा कोई नहीं जग में, भाई बाप माँ ।
मैं हूँ अरस अरूपी ऐ शुद्धात्मा ॥...

२. धन शरीर परिवार, यह कोई मेरे ना ।
मैं हूँ एक अखंड ध्रुव शुद्धात्मा ॥...

३. मन वचन कर्म यह भी, कोई मेरे ना ।
मैं हूँ अलख निरंजन ऐ शुद्धात्मा ॥...

४. मेरा पर से कोई भी है सम्बंध ना ।
मैं हूँ चैतन्य लक्षण ऐ शुद्धात्मा ॥...

५. पर का कर्ता धर्ता है बहिरात्मा ।
ज्ञानानंद स्वभावी मैं शुद्धात्मा ॥...

६. रहूँ अपने में बन जाऊं सिद्धात्मा ।
ब्रम्हानंद मगन मैं हूँ शुद्धात्मा ॥...

❋ मंगलाचरण ❋

चेतना लक्षणं आनंद कन्दनं, वन्दनं वन्दनं वन्दनं वन्दनं ॥
शुद्धातम हो सिद्ध स्वरूपी ।
ज्ञान दर्शनमयी हो अरूपी ॥
शुद्ध ज्ञानं मयं चेयानंदनं, वन्दनं वन्दनं वन्दनं वन्दनं ॥१॥
द्रव्य नो भाव कर्मों से न्यारे ।
मात्र ज्ञायक हो इष्ट हमारे ॥
सुसमय चिन्मयं निर्मलानंदनं, वन्दनं वन्दनं वन्दनं वन्दनं ॥२॥
पंच परमेष्ठी तुमको ही ध्याते ।
तुम ही तारण-तरण हो कहाते॥
शाश्वतं जिनवरं ब्रम्हानंदनं, वन्दनं वन्दनं वन्दनं वन्दनं ॥३॥

ॐ नमः सिद्धं, ॐ नमः सिद्धं, ॐ नमः सिद्धं,
देवदेवं नमस्कृतं, लोकालोक प्रकाशकं ।
त्रिलोकं भुवनार्थं ज्योतिः, उवंकारं च विन्दते ॥
अज्ञान तिमिरान्धानां, ज्ञानांजन श्लाकया ।
चक्षुरून्मीलितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः ॥
श्री परम गुरवे नमः, परम्पराचार्येभ्यो नमः ॥
भगवान महावीर स्वामी की जय ॥
जिनवाणी मातेश्वरी की जय ॥
श्री गुरू तारण तरण मण्डलाचार्य महाराज की जय ॥

श्री तारण तरण अध्यात्म पूजा (शुद्ध षट् कर्म)

✲ अध्यात्म आराधना ✲

मंगलाचरण

दोहा

शुद्धातम की वन्दना, करहुँ त्रियोग सम्हारि।
षट् आवश्यक शुद्ध जो, पालूँ श्रद्धा धारि ॥१॥

प्रणमूं आतम देव को, जो है सिद्ध समान।
यही इष्ट मेरा प्रभो, शुद्धातम भगवान ॥२॥

भव दु:ख से भयभीत हूँ, चाहूँ निज कल्याण।
निज आतम दर्शन करूँ, पाऊँ पद निर्वाण ॥३॥

शुद्ध सिद्ध अर्हन्त अरू, आचारज उवझाय।
साधु गण को मैं सदा, प्रणमूं शीश नवाय ॥४॥

वीतराग तारण गुरू, आराधक ध्रुव धाम।
दर्शाते निज धर्म को, उनको करूं प्रणाम ॥५॥

जिनवाणी जिय को भली, करे सुबुद्धि प्रकाश।
यातैं सरसुती को नमूं, करूं तत्व अभ्यास ॥६॥

देव शास्त्र गुरू को नमन, करके बारम्बार।
करूं भाव पूजा प्रभो, यही मुक्ति का द्वार ॥७॥

छन्द

है देव निज शुद्धात्मा, जो बस रहा इस देह में।
मन्दिर मठों में वह कभी, मिलता नहीं पर गेह में॥
जिनवर प्रभु कहते स्वयं, निज आत्मा ही देव है।
जो है अनन्त चतुष्टयी, आनन्द घन स्वयमेव है ॥१॥

जैसे प्रभु अरिहन्त अरू सब, सिद्ध नित ही शुद्ध हैं।
वैसे स्वयं शुद्धात्मा, चैतन्य मय सु विशुद्ध है ॥
दिव्य ध्वनि में पुष्प बिखरे, देव निज शुद्धात्मा।
यह शुद्ध ज्ञान विज्ञान धारी, आत्मा परमात्मा ॥२॥

सतदेव परमेष्ठी मयी, जिसका कि ज्ञान महान है।
जिसमें झलकता है स्वयं, यह आत्मा भगवान है॥
ऐसा परम परमात्मा, निश्चय निजातम रूप है।
जो देह देवालय बसा, शुद्धात्मा चिद्रूप है ॥३॥

जो शुद्ध समकित से हुए, वे करें पूजा देव की।
पर से हटाकर दृष्टि, अनुभूति करें स्वयमेव की॥
निज आत्मा का अनुभवन, परमार्थ पूजा है यही।
जिनराज शासन में इसे, कल्याणकारी है कही ॥४॥

मैं शुद्ध पूजा देव की, करता हूँ मां हे ! सरस्वती।
यह भाव पूजा नित्य करते, विज्ञजन ज्ञानी व्रती॥
निश्चय सु पूजा में नहीं, आडम्बरों का काम है।
पर में भटकने से कभी, मिलता न आतम राम है ॥५॥

किरिया करें पूजा कहें, कैसी जगत की रीति है।
पूजा कभी होगी न उनकी, जिन्हें पर से प्रीति है॥
जब आत्मदर्शन हो नहीं, फिर प्रपंचों से लाभ क्या।
जब आत्मदर्शन हो सही, फिर प्रपंचों से काम क्या ॥६॥

पूजा की विधि

मैं एक दर्शन ज्ञान मय, शाश्वत सदा सुख धाम हूँ।
चैतन्यता से मैं अलंकृत, अमर आतम राम हूँ ॥
संसार में बस इष्ट मेरा, यही शुद्ध स्वभाव है ।
जो स्वयं में परिपूर्ण है, जिसमें न कोई विभाव है ॥७॥

चिन्तामणी सम स्वयं का, चैतन्य तत्व महान है ।
निज का करूं मैं चिन्तवन, निज का करूं श्रद्धान है ॥
शुद्धात्मा ही देव है जो, गुण अनन्त निधान है ।
मैं स्वानुभव में देख लूं, आतम स्वयं भगवान है ॥८॥

जो हैं विचक्षण योगिजन, कर योग की निस्पंदना ।
ओंकार मयी ध्रुव धाम की, करते सदा वे वन्दना ॥
पर से हटा उपयोग को, करते निजातम अनुभवन ।
इस तरह होता है प्रभु, अरिहन्त सिद्धों को नमन ॥९॥

अध्यात्म भक्ति करके ज्ञानी, आत्मा को जानते ।
जो देव निज शुद्धात्मा, निश्चय उसे पहिचानते ॥
अपने ही शुद्ध स्वभाव में, ज्ञानी रमण करते सदा ।
चिद्रूप में तल्लीन हो, पाते परम शिव शर्मदा ॥१०॥

ज्ञानी परम ध्यानी स्वयं में, लीन कर उपयोग को ।
निज का ही करते अनुभवन,तजकर सकल संयोग को॥
जिनवर कहें ज्ञानी वही, जो जानते इस मर्म को ।
वे प्राप्त करते हैं महा, महिमा मयी जिन धर्म को ॥११॥

अरिहन्त सिद्धों सम स्वयं, शुद्धात्मा प्रत्यक्ष है ।
यह स्वानुभूति गम्य है, निज में रमूं, दृढ़ लक्ष्य है ॥

सत देव पूजा करूं मैं, पा जाऊँ सिद्धि की निधि ।
उपयोग को निज में लगाना, देव पूजा की विधि ॥१२॥

निश्चय सु पूजा है यही, मंगलमयी सुखवर्द्धिनी ।
इससे प्रगटता सिद्ध पद, आनन्द वृद्धि षट् गुणी ॥
व्यवहार से पद देव प्राप्ति, हेतु जो साधन कहे ।
मैं करूं वैसी साधना, उस भावना में मन रहे ॥१३॥

व्यवहार पूजा का स्वरूप

अरिहन्त सिद्धाचार्य अरू, उवझाय मुनि महाराज हैं।
यह पंच परमेष्ठी परम गुण, आत्मा के काज हैं ॥
निज आत्मा में ही प्रगटते, देव के यह गुण सभी ।
पर में करो अन्वेषणा, निज गुण मिलेंगे न कभी ॥१४॥

सम्यक् सुदर्शन ज्ञान चारित, मयी है निज आत्मा ।
पहिचानते ज्ञानी इसे, नहिं जानते बहिरात्मा ॥
निज आत्मा को छोड़, पर में रत्नत्रय मिलते नहीं ।
जड़ में कभी चैतन्य के, सुन्दर कमल खिलते नहीं॥१५॥

चतुरानुयोगों और जिनवाणी, मयी निज आत्मा ।
है स्वयं केवलज्ञान मय, सर्वज्ञ निज परमात्मा ॥
सम्यक्त आदि अष्ट गुण मय, सिद्ध सम है आत्मा ।
सोलह जु कारण भाव से, प्रगटे सुपद परमात्मा ॥१६॥

होता इन्हीं भावों से, तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध है ।
इस अर्थ में शुभ रूप है, पर आत्मा निर्बन्ध है ॥
उत्तम क्षमा आदि कहे, व्यवहार से दश धर्म हैं ।
इनका धनी निज आत्मा, यह जिन वचन का मर्म है॥१७॥

अष्टांग सम्यग्दृष्टि के, नि:शंकितादि जो कहे ।
अष्टांग सम्यक्ज्ञान मय, ज्ञानी सदा निज में रहे ॥
पांचों महाव्रत समिति पांचों, गुप्तियां त्रय आचरूं ।
इन पचहत्तर गुण पुंज से, देवत्व पद प्राप्ति करूं ॥१८॥

जब तक करूं अरिहन्त, सिद्धों का गुणों से चिन्तवन ।
निज आत्मा की साधना, मैं करूं आराधन मनन ॥
तब तक इसे व्यवहार पूजा, कही श्री जिन वचन में ।
यह वह कुशल व्यवहार है, जो हेतु निज अनुभवन में ॥१९॥

अरिहन्त को जो, द्रव्य गुण पर्याय, से पहिचानता ।
निश्चय वही निज देव रूपी, स्व समय को जानता ॥
सुज्ञान का जब दीप जलता है, स्वयं के हृदय में ।
मोहान्ध टिक पाता नहीं, आत्मानुभव के उदय में ॥२०॥

मैं मोह रागादिक विकारों से, रहित अविकार हूँ ।
ऐसी निजातम स्वानुभूति मय, समय का सार हूँ ॥
यह निर्विकल्प स्वरूप मयता, वास्तविक पूजा यही ।
जो करे अनुभव गुण पचहत्तर, से भविकजन है वही ॥२१॥

पूजा का महत्व और सम्यक्त्व के आठ अंग

इस भाव पूजा विधि से, होता उदय सम्यक्त का ।
अष्टांग अरू गुण अष्ट सह, पुरूषार्थ जगता मुक्ति का ॥
मुझको नहीं शंका रहे, जिन वचन के श्रद्धान में ।
मैं सकल वांछा को तजूं, ज्ञायक रहूं निज ज्ञान में ॥२२॥

जो वस्तु जैसी है सदा, वैसी रहे त्रय काल में ।
किससे करूं ग्लानि घृणा, क्यों पडूं इस जंजाल में ॥

नित रहे मेरी तत्व दृष्टि, मूढ़ता को मैं तजूं ।
तत्वार्थ के निर्णय सहित, स्व समय को मैं नित भजूं ॥२३॥

निज गुणों को, पर औगुणों को, मैं सदा ढकता रहूँ ।
गर हो किसी से भूल तो भी, मैं किसी से न कहूँ ॥
कामादि वश गर कोई साधर्मी, धरम पथ से डिगे ।
तो मैं करूं वह कार्य जिससे, फिर सुपथ में वह लगे ॥२४॥

मैं करूं स्थित स्वयं को भी, मोक्ष के पथ में प्रभो ।
साधर्मियों से नित मुझे, गौ वत्स सम वात्सल्य हो ॥
व्यवहार में जिन धर्म की, मैं करूं नित्य प्रभावना ।
बहती रहे मम हृदय में, सु विशुद्ध आतम भावना ॥२५॥

निरतिचार सम्यक्त्व पालन की भावना

शंका नहीं कांक्षा नहीं अरू, न ही विचिकित्सा धरूं ।
मैं अन्य दृष्टि की प्रशंसा, और न स्तुति करूं ॥
अतिचार भी न लगे कोई, मुझे समकित में कभी ।
समकित रवि के तेज में, यह दोष क्षय होवें सभी ॥२६॥

सम्यक्त्व के आठ गुण मय भाव पूजा

संवेग

हे प्रभो ! अब मैं न पडूं, संसार के जंजाल में ।
मुझको भटकना न पड़े, जग महावन विकराल में ॥
आवागमन से छूट जाऊँ, बस यही है भावना ।
संवेग गुण मय करूं पूजा, धारि चतु आराधना ॥२७॥

निर्वेद

संसार तन अरू भोग दु:ख मय, रोग हैं भव ताप हैं।
उनके निवारण हेतु यह, निर्वेद गुण की जाप है ॥
नि:शल्य हो निर्द्वन्द हो, निर्लोभ अरू नि:क्लेश हो।
निर्वेद गुण धारण करूं, यह आत्मा परमेश हो ॥२८॥

निन्दा

यह शल्य के मिथ्यात्व के, कुज्ञान मय जो भाव हैं।
जितने अशुभ परिणाम अरू, सब राग द्वेष विभाव हैं॥
अक्षय सु पद प्राप्ति के हेतु, नित करूं आलोचना।
निन्दा करूं मैं दुर्गुणों की, भव भ्रमण दु:ख मोचना ॥२९॥

गर्हा

निज दोष गुरू के सामने, निष्कपट होकर के कहूं।
जो जो हुई हैं गल्तियां, उनका सुप्रायश्चित चहूं॥
निर्दोष होने के लिये, निन्दा गर्हा उर में धरूं।
अन्तर विकारों को जलाकर, मुक्ति की प्राप्ति करूं॥३०॥

उपशम

भीतर भरा निज ज्ञान सिंधु, जलधि सम लहरा रहा।
ऐसी परम सित शांति को,सम्यक्त्व गुण उपशम कहा॥
भव रोग हरने हेतु मैं, नित ज्ञान में ही आचरूं।
उपशम सुगुण से करूं पूजा, शान्त समता में रहूं॥३१॥

भक्ति

भक्ति करूं सत देव की, गुरू शास्त्र की व्यवहार से।
निश्चय अपेक्षा गाढ़ प्रीति, हो समय के सार से ॥
सु ज्ञान का दीपक जला, मोहान्ध की कर दूं विदा।
इस हेतु से भक्ति करूं, पा जाऊं शिव पद शर्मदा॥३२॥

वात्सल्य

साधर्मियों से हे प्रभो, मुझको सदा वात्सल्य हो।
ईर्ष्यादि दोष विहीन मेरा, मन सदा नि:शल्य हो ॥
चैतन्य मूर्ति आत्मा से, प्रीति हो अनुराग हो।
निज में रमूं निज में जमूं, आठों करम का त्याग हो॥३३॥

निष्कर्म पद की प्राप्ति हेतु, वल्सलत्व ग्रहण करूं।
होगी सफल पूजा तभी, जब मैं भवोदधि से तरूं ॥

अनुकम्पा

संसार के षट्काय जीवों पर, दया परिणाम हो।
मुझसे कभी कोई दु:खी न हो, सुबह या शाम हो॥३४॥

मेरी रहे मुझ पर दया, आतम दु:खी न हो कभी।
निज आत्मा से दूर ठहरें, मोह रागादिक सभी ॥
मैं मुक्ति फल की प्राप्ति हेतु, शुद्ध अनुकम्पा धरूं।
शुद्धात्मा में लीन होकर, मुक्ति की प्राप्ति करूं ॥३५॥

अष्टांग अरू गुण सहित, संयम आचरण पथ पर चलूं।
होकर विरागी वीतरागी, कर्म के दल को दलूं ॥
सम्पूर्ण पापों से रहित, व्रत महाव्रत को आचरूं।
निज रूप में तल्लीन हो, अरिहन्त पद प्राप्ति करूं ॥३६॥

सब कर्म विघटें ज्ञान प्रगटे, पूर्ण शुद्ध दशा प्रभो ।
आठों सुगुण प्रगटें सुसम्यक्, ज्ञान दर्शन शुद्ध जो ॥
अगुरूलघु अवगाहना, सूक्ष्मत्व वीरज के धनी ।
बाधा रहित निर्लेप हैं प्रभु सिद्ध, लोक शिखा मणी ॥३७॥

निश्चय तथा व्यवहार से, शाश्वत मुकति का पंथ है ।
भीतर हुआ है स्वानुभव, तब आचरण निर्ग्रन्थ है ॥
हो पूज्य के सम आचरण, पूजा वही सच्ची कही ।
गर आचरण में भेद है, तो फिर हुई पूजा नहीं ॥३८॥

अरिहन्त आदि देव पद, निज आत्मा में शोभते ।
अज्ञान मय जो जीव हैं, वे अदेवों में खोजते ॥
जल के विलोने से कभी, मक्खन निकलता है नहीं ।
ज्यों रेत पेलो कोल्हूआ में, तेल मिलता है नहीं ॥३९॥

त्यों ही करे जो अदेवों में, देव की अन्वेषणा ।
पर देव न मिलता कभी, यह जिन प्रभु की देशना ॥
देवत्व का रहता सदा, चैतन्य में ही वास है ।
कैसे मिले वह अचेतन में, जो स्वयं के पास है ॥४०॥

चैतन्य मय सतदेव की, जो वन्दना पूजा करें ।
वे परम ज्ञानी ध्यान रत हो, मोक्ष लक्ष्मी को वरें ॥
इस तरह पूजा देव की कर, गुरू का सुमरण करूं ।
उनके गुणों को प्रगट कर, संसार सागर से तरूं ॥४१॥

शुद्ध गुरू उपासना

जो वीतरागी धर्म ध्यानी, भाव लिंगी संत हैं ।
रमते सदा निज आत्मा में, शांति प्रिय निर्ग्रन्थ हैं ॥

करते मुनि ज्ञानी हमेशा, स्वानुभव रस पान हैं ।
वे ही तरण तारण गुरू, जग में जहाज समान हैं ॥४२॥

जिनको नहीं संसार तन, भोगों की कोई चाह है ।
वे जगत जीवों को बताते, आत्म हित की राह है ॥
जो रत्नत्रय की साधना, आराधना में लीन हैं ।
व्यवहार से मेरे गुरू, जो राग-द्वेष विहीन हैं ॥४३॥

ऐसे सुगुरू के सद्गुणों का, स्मरण चिन्तन मनन ।
करना थुति अरू वन्दना, बस है यही सद्गुरू शरण ॥
निज अन्तरात्मा निज गुरू, यह नियत नय से जानना ।
ज्ञाता सदा रहना सुगुरू की, है यही आराधना ॥४४॥

संसार में जो अज्ञजन, कुगुरू अगुरू को मानते ।
वे डूबते मझधार में, संसार की रज छानते ॥
इससे सदा बचते रहो, झूठे कुगुरू के जाल से ।
बस बनो शुद्ध गुरू उपासक, बचो जग जंजाल से ॥४५॥

शुद्ध स्वाध्याय

जिस ग्रन्थ में हो वीतरागी, जिन प्रभु की देशना ।
जो प्रेरणा दे जीव को, तुम करो स्व संवेदना ॥
जिसमें न होवे दोष कोई, पूर्व अपर विरोध का ।
उस शास्त्र का स्वाध्याय करना, लक्ष्य रख निज बोध का ॥४६॥

सत्शास्त्र का अध्ययन मनन, व्यवहार से स्वाध्याय है ।
ध्रुव धाम का चिंतन जतन, नय नियत का अभिप्राय है ॥
मन वचन तन की एकता कर, लीन हो निज ज्ञान में ।
स्वाध्याय निश्चय है यही, स्वाधीन हो निज ध्यान में ॥४७॥

शुद्ध संयम

संयम कहा है द्विविध, पहला इन्द्रियां मन वश करो।
षट् काय जीवों पर दया, रक्षा अपर संयम धरो ॥
पंचेन्द्रियों के अश्व चंचल हैं, इन्हें वश में रखूं।
संयम सहित धर कर धरम, अमृत रसायन को चखूं ॥४८॥

व्यवहार से संयम कहा, निश्चय सुरत निज की रहे।
'मैं शुद्ध हूँ' उपयोग सम्यक् ज्ञान धारा में बहे ॥
त्रय रत्न का निर्मल सलिल, जो ज्ञान मय नित बह रहा।
अवगाह इसमें नित करो, निश्चय यही संयम कहा ॥४९॥

शुद्ध तप

इच्छा रहित निश्क्लेश हो, तप साधना उर धारना।
द्वादस विधि तप आचरण कर, कर्म रिपु निरवारना ॥
रागादि सब विकृत विभावों, पर न दृष्टि डालना।
निज रूप में लवलीन होकर, शुद्ध तप को पालना ॥५०॥

निश्चय तथा व्यवहार से, शाश्वत रहे तप की कथा।
निर्द्वन्द होकर धारि लो, मिट जायेगी जग की व्यथा ॥
पुरूषार्थ के इस मार्ग पर, आलस कभी करना नहीं।
यह शुद्ध तप पहुंचायेगा, जहां ज्ञान झड़ियां लग रहीं ॥५१॥

शुद्ध दान

जो वीतरागी साधु उत्तम, और मध्यम अणुव्रती।
तत्वार्थ श्रद्धानी जघन है, पात्र अविरत समकिती ॥
श्रावक सदा देता सु पात्रों को, चतुर्विधि दान है।
आहार औषधि अभय अरू, चौथा कहा वह ज्ञान है ॥५२॥

शुभ भावना से विधि सहित, यह दान है व्यवहार से।
होगा सु निश्चय दान जब, मुंह मोड़ लो संसार से ॥
है पात्र शुद्ध स्वभाव अरू, दाता कहा उपयोग को।
सम्पन्न होता दान जब, सम्यक्त्व का शुभ योग हो ॥५३॥

उपयोग का निज रूप में ही, लीन होना दान है।
है यह अनोखा दान जो, देता परम निर्वाण है ॥
शुभ दान से हो देवगति, अरू शुद्ध से मुक्ति मिले।
चैतन्य उपवन में रहो, तब पुष्प आनन्द के खिलें ॥५४॥

सत्श्रावकों को शुद्ध आवश्यक, कहे षट् कर्म हैं।
जो भव्य इनको पालते, मिलता उन्हें शिव शर्म है ॥
रचते सदा जो प्रपंचों को, वे भ्रमे संसार में।
मेरी लगे भव पार नैया, फँसे नहीं मझधार में ॥५५॥

(१) मैत्री भावना

जग के सकल षट् काय प्राणी, ज्ञान मय रहते सभी।
मुझको रहे सत्वेषु मैत्री, हो सफल जीवन तभी ॥
व्यवहार में सब प्राणियों के, प्रति हो सद्भावना।
निश्चय स्वयं से प्रीति हो, बस यही मैत्री भावना ॥५६॥

(२) प्रमोद भावना

जो मोक्ष पथ के पथिक हैं, निज आत्म ज्ञानी संत हैं।
वे देशव्रत के धनी हैं अथवा, मुनि गुणवन्त हैं ॥
उन ज्ञानियों को देखकर, भर जाए हियरा प्रेम से।
बस हो प्रमोद सु भावना, श्रद्धान मय व्रत नेम से ॥५७॥

(३) कारूण्य भावना

संसार में जो जीव दु:ख से, त्रस्त साता हीन हैं ।
वे अशुभ कर्मोदय निमित से, दरिद्री अरू दीन हैं ॥
ऐसे सकल जन दीन दुखियों, पर मुझे करूणा रहे ।
दु:ख मय कभी न हो निजातम, सत धरम शरणा गहे ॥५८॥

(४) माध्यस्थ भावना

जो जीव सत्पथ से विमुख हैं, धर्म नहिं पहिचानते ।
अज्ञान वश पूर्वाग्रही, एकान्त हठ को ठानते ॥
ऐसे कुमार्गी हठी जीवों, पर मुझे माध्यस्थ हो ।
मैं रखूं समता भाव सब पर, स्वयं में आत्मस्थ हो ॥५९॥

अध्यात्म ही संसार के, क्लेशोदधि का तीर है ।
चलता रहूं इस मार्ग पर, मिट जायेगी भव पीर है ॥
ज्ञानी बनूं ध्यानी बनूं अरू, शुद्ध संयम तप धरूं ।
व्यवहार निश्चय से समन्वित, मुक्ति पथ पर आचरूं॥६०॥

दोहा

मुझको दो मां आत्मबल, करूँ परम पुरूषार्थ ।
निज स्वभाव में लीन हो, पा जाऊं परमार्थ ॥१॥

शुद्ध षटावश्यक विधि, पूजा भाव प्रधान ।
कीनी है शुभ भाव से, चाहूँ निज कल्याण ॥२॥

आवश्यक षट् कर्म जो, शुद्ध कहे गुरू तार ।
इनका मैं पालन करूं, हो जाऊं भव पार ॥३॥

ब्रम्हानन्द स्वरूप मय, वीतराग निज धर्म ।
धारण कर निज में रमूं, विनसें आठों कर्म ॥४॥

देव गुरू आगम धरम, ज्ञायक आतम राम ।
तीनों योग सम्हारि के,शत-शत करूं प्रणाम ॥५॥

जय तारण तरण

देव (परमात्मा)	–	तारण तरण
गुरू	–	तारण तरण
धर्म (स्वभाव)	–	तारण तरण
शुद्धात्मा	–	तारण तरण
बोलो तारण तरण	–	जय तारण तरण

अध्यात्म

अध्यात्म का अर्थ है – अपने आत्म स्वरूप को जानना। अध्यात्म एक विज्ञान है, एक कला है, एक दर्शन है, अध्यात्म मानव के जीवन में जीने की कला के मूल रहस्य को उद्घाटित कर देता है।

"पूजा पूज्य समाचरेत्"

देव गुरू शास्त्र पूजा

सुद्ध दिस्टी च दिस्टंते,
सार्धं न्यान मयं ध्रुवं ।
सुद्ध तत्वं च आराध्यं,
वंदना पूजा विधीयते ।।

चिदानंद चैतन्य स्वरूप शुद्ध स्वभाव को शुद्ध दृष्टि से देखना, अनुभव करना, ज्ञान मयी ध्रुव स्वभाव की साधना करना और शुद्ध तत्व की आराधना में रत रहना ही वंदना पूजा की वास्तविक विधि है।

(श्री पंडित पूजा - २८)

❋ देव दर्शन ❋

शुद्ध निज स्वभाव की वेदिकाग्र थिर होके,
ज्ञानी अनुभवते चिद्रूप निरग्रंथ है।
यहीं परम ध्रौव्य धाम शुद्धातम देव जो,
सदा चतुष्टय मयी अनादि अनन्त है।।

तीन लोक माँहि स्व समय शुद्ध है त्रिकाल,
देह देवालय में हीं रहता भगवन्त है।
ज्ञानी अनुभूति करते निज शुद्धात्म की,
यहीं देव दर्शन निश्चै तारण पंथ है।।

(श्री पंडित पूजा -पद्यानुवाद गाथा - २१)
ब्र. बसंत

१. देव वन्दना

सब घातिया का घात कर, निज लीन हुई जो आत्मा।
परिपूर्ण ज्ञानी वीतरागी, वह सकल परमात्मा ॥
जिनराज हैं वह जिन्हें आती, कभी पर की गंध ना।
चेतनमयी सत देव की, शत शत करूं मैं वंदना ॥१॥

जिनवर वही प्रभु हैं वही, जो राग द्वेष विहीन हैं।
कहते जिनेश्वर उन्हीं को, निज रूप में जो लीन हैं॥
निर्दोष निष्कषाय जिनको, है करम का बन्ध ना।
चेतनमयी सत देव की, शत शत करूंमैं वन्दना ॥२॥

सब घाति और अघाति आठों, कर्म जिनने क्षय किये।
सम्यक्त्व दर्शन ज्ञान मय जिन, सर्वगुण प्रगटा लिये॥
वे सिद्ध परमातम प्रभु, स्व तत्व मय जहां द्वन्द ना।
चेतनमयी सत देव की, शत शत करूंमैं वन्दना ॥३॥

हैं सिद्ध सर्व विशुद्ध निर्मल, तत्व मय जिनकी दशा।
जो हैं सदा विज्ञान घन, अमृत रसायन मय दशा॥
ऐसे निकल परमात्म जिन, परिणति हुई निरंजना।
चेतनमयी सत देव की, शत शत करूंमैं वन्दना ॥४॥

अरिहन्त हैं सर्वज्ञ चिन्मय, वीतराग जिनेश हैं।
लोकाग्रवासी सिद्ध जो, नित निरंजन परमेश हैं॥
यह देव हैं जिनका रहा, पर से कोई सम्बन्ध ना।
चेतनमयी सत देव की, शत शत करूं मैं वन्दना ॥५॥

अरिहंत सिद्धादि कहे, व्यवहार से सत देव हैं।
परमार्थ सच्चा देव, निज शुद्धात्मा स्वयमेव है ॥

चैतन्य मय शुद्धात्मा में, राग का है रंग ना।
चेतनमयी सतदेव की, शत शत करूं मैं वन्दना ॥६॥

इस देह देवालय बसे, शुद्धात्मा को जान लो।
चेतन त्रिलोकी भूप, सच्चा देव यह पहिचान लो॥
अरिहंत सम निज आत्मा, जहां योग की निस्पंदना।
चेतनमयी सत देव की, शत शत करूं मैं वन्दना ॥७॥

जग मांहि सच्चे देव को तो, कोई विरले जानते।
जो भेद ज्ञानी हैं वही, निज रूप को पहिचानते॥
सिद्धों सदृश निज आत्मा, जहां कर्म का है संग ना।
चेतनमयी सत देव की, शत शत करूं मैं वन्दना ॥८॥

सत देव के शुभ नाम पर, जो अदेवों को पूजते।
वे मूढ़ रवि का उजाला तज, अंधेरे से जूझते॥
वह धर्म बह्वल बंधी बेड़ी, कह रही थी चन्दना।
चेतनमयी सत देव की, शत शत करूंमैं वन्दना ॥९॥

जग जीव लौकिक स्वार्थ वश, तो कुदेवों को मानते।
अज्ञान भ्रम को बढ़ाते, चलनी से पानी छानते॥
जग जीव खुद के साथ ही, इस विधि करें प्रवंचना।
चेतनमयी सतदेव की, शत शत करूं मैं वन्दना ॥१०॥

सद्गुरू तारण-तरण कहते, जाग जाओ तुम स्वयं।
शुद्धात्मा को जानकर, सब मेट दो अज्ञान भ्रम॥
सत देव ब्रह्मानंद मय, कर दे जगत की भंजना।
चेतनमयी सतदेव की, शत शत करूं मैं वन्दना ॥११॥

जयमाल

निज चैतन्य स्वरूप में, पर का नहीं प्रवेश ।
चिन्मय सत्ता का धनी, है सच्चा परमेश ।।१।।

अरस अरूपी है सदा, शुद्धातम ध्रुव धाम ।
निश्चय आतम देव को, शत शत करूं प्रणाम ।।२।।

अरिहन्त सिद्ध व्यवहार से, जानो सच्चे देव ।
निश्चय सच्चा देव है, शुद्धातम स्वयमेव ।।३।।

वीतराग देवत्व पर, चेतन का अधिकार ।
सिद्ध स्वरूपी आत्मा, स्वयं समय का सार ।।४।।

दर्शन ज्ञान अनन्त मय, वीरज सौख्य निधान ।
पहिचानो निज रूप को, पाओ पद निर्वाण ।।५।।

अट्ठसट्ठ तीरथ परिभमइ, मूढ़ा मरइ भमंतु ।
अप्पा देउ ण वंदहि, घट महिं देव अणंदु – आणंदा रे ।।

अज्ञानी अड़सठ तीर्थों की यात्रा करता है, इधर-उधर भटकता हुआ अपना जीवन समाप्त कर देता है किन्तु निजात्मा शुद्धात्मा भगवान की वंदना नहीं करता है। अपने ही घट में महान आनंदशाली देव है। हे आनंद को प्राप्त करने वाले ! अपने ही घट में महान आनंद शाली देव है।

(श्री महानंदि देव कृत आणंदा गाथा – ३)

२. गुरू स्तुति

अनुभूति में अपनी जिन्होंने, आत्म दर्शन कर लिया ।
समकित रवि को व्यक्त कर, मिथ्यात्व का तम क्षय किया।।
रागादि रिपुओं पर विजय पा, कर दिये सबको शमन ।
उन वीतरागी सद्गुरू को, नित नमन है नित नमन ।।१।।

जिनके अचल सद्ज्ञान में, दिखता सतत् निज आत्मा ।
वे जानते हैं जगत में, हर आत्मा परमात्मा ।।
जो ज्ञान चारित लीन रहते, हैं सदा विज्ञान घन ।
उन वीतरागी सद्गुरू को, नित नमन है नित नमन ।।२।।

जिनको नहीं संसार की, अरू देह की कुछ वासना ।
जो विरत हैं नित भोग से, पर की जिन्हें है आस ना ।।
निर्ग्रन्थ तन इसलिये दिखता, है सदा निर्ग्रन्थ मन ।
उन वीतरागी सद्गुरू को, नित नमन है नित नमन ।।३।।

परित्याग जिनने कर दिया, दुर्ध्यान आरत रौद्र का ।
शुभ धर्म शुक्ल निहारते, धर ध्यान चिन्मय भद्र का ।।
जग जीव को सन्मार्ग दाता, इस तरह ज्यों रवि गगन ।
उन वीतरागी सद्गुरू को, नित नमन है नित नमन ।।४।।

उपवन का माली जिस तरह, पौधों में जल को सिंचता ।
मिट्टी को गीली आर्द्र कर, वह स्वच्छ जल को किंचता ।।
त्यों श्री गुरू उपदेश दे, सबको करें आतम मगन ।
उन वीतरागी सद्गुरू को, नित नमन है नित नमन ।।५।।

जो ज्ञान ध्यान तपस्विता मय, ग्रन्थ चेल विमुक्त हैं ।
निर्ग्रन्थ हैं निश्चेल हैं, सब बन्धनों से मुक्त हैं ।।

संस्कार जाति देह में, जिनका कभी जाता न मन ।
उन वीतरागी सद्गुरू को, नित नमन है नित नमन ॥६॥

जो नाम अथवा काम वश, या अहं पूर्ति के लिये ।
धरते हैं केवल द्रव्यलिंग, वह पेट भरने के लिये ॥
ऐसे कुगुरू को दूर से तज, चलो ज्ञानी गुरू शरण ।
उन वीतरागी सद्गुरू को, नित नमन है नित नमन ॥७॥

सर्प अग्नि जल निमित से, एक ही भव जाय है ।
लेकिन कुगुरू की शरण से, भव भव महा दु:ख पाय है ॥
काष्ठ नौका सम सुगुरू हैं, ज्ञान रवि तारण तरण ।
उन वीतरागी सद्गुरू को, नित नमन है नित नमन ॥८॥

जग मांहि जितने भी कुगुरू, सब उपल नाव समान हैं ।
भव सिंधु में डूबें डुबायें, जिन्हें भ्रम कुज्ञान है ॥
पर भावलिंगी सन्त करते, ज्ञान मय नित जागरण ।
उन वीतरागी सद्गुरू को, नित नमन है नित नमन ॥९॥

निस्पृह अकिंचन नित रहें, वे हैं सुगुरू व्यवहार से ।
है अन्तरात्मा सद्गुरू, परमार्थ के निरधार से ॥
निज अन्तरात्मा है सदा, चैतन्य ज्योति निरावरण ।
उन वीतरागी सद्गुरू को, नित नमन है नित नमन ॥१०॥

निज अन्तरात्मा को जगालो, भेदज्ञान विधान से ।
भय भ्रम सभी मिट जायेंगे, सद्गुरू सम्यक्ज्ञान से ॥
वह करे ब्रह्मानन्द मय, मिट जायेगा आवागमन ।
उन वीतरागी सद्गुरू को, नित नमन है नित नमन ॥११॥

जयमाल

चेतन अरू पर द्रव्य का, है अनादि संयोग ।
सद्गुरू के परिचय बिना, मिटे न भव का रोग ॥१॥

आतम अनुभव के बिना, यह बहिरातम जीव ।
सद्गुरू से होकर विमुख, जग में फिरे सदीव ॥२॥

भेद ज्ञान कर जान लो, निज शुद्धातम रूप ।
पर पुद्गल से भिन्न मैं, अविनाशी चिद्रूप ॥३॥

गुरू ज्ञान दीपक दिया, हुआ स्वयं का ज्ञान ।
चिदानन्द मय आत्मा, मैं हूँ सिद्ध समान ॥४॥

ज्ञाता रहना ज्ञान मय, यही समय का सार ।
सद्गुरू की यह देशना, करती भव से पार ॥५॥

जीवों को सर्वज्ञ द्वारा भाषित वीतरागी धर्म प्राप्त करना दुर्लभ है, मनुष्य जन्म प्राप्त होना दुर्लभ है, परन्तु मनुष्य जन्म मिलने पर भी अंतरात्मा एवं वीतरागी सद्गुरू रूप सामग्री प्राप्त होना अत्यंत दुर्लभ है।

३. जिनवाणी का सार

श्री जिनवर सर्वज्ञ प्रभु, परिपूर्ण ज्ञान मय लीन रहें ।
दिव्य ध्वनि खिरती फिर, ज्ञानी गणधर ग्रंथ विभाग करें॥
जिससे निर्मित होता, श्रुत का, द्वादशांग भंडार है ।
स्वानुभूति ही सच्ची पूजा, जिनवाणी का सार है ॥१॥

पूर्वापर का विरोध होता, किंचित् न जिनवाणी में ।
वस्तु स्वरूप यथार्थ प्रकाशित, करती जग के प्राणी में॥
निज पर को पहिचानो चेतन, यही मुक्ति का द्वार है ।
स्वानुभूति ही सच्ची पूजा, जिनवाणी का सार है ॥२॥

जिनवाणी मां सदा जगाती, ज्ञायक स्वयं महान हो ।
अपने को क्यों भूल रहे, तुम स्वयं सिद्ध भगवान हो॥
देखो अपना ध्रुव स्वभाव, पर पर्यायों के पार है ।
स्वानुभूति ही सच्ची पूजा, जिनवाणी का सार है ॥३॥

द्वादशांग का सार यही, मैं आतम ही परमातम हूँ ।
शरीरादि सब पर यह न्यारा, पूर्ण स्वयं शुद्धातम हूँ॥
ध्रुव चैतन्य स्वभाव सदा ही, अविनाशी अविकार है ।
स्वानुभूति ही सच्ची पूजा, जिनवाणी का सार है ॥४॥

बाह्य द्रव्य श्रुत जिनवाणी, कहलाती है व्यवहार से ।
स्वयं सुबुद्धि है जिनवाणी, निश्चय के निरधार से॥
मुक्त सदा त्रय कुज्ञानों से, जहां न कर्म विकार है ।
स्वानुभूति ही सच्ची पूजा, जिनवाणी का सार है ॥५॥

कण्ठ कमल आसन पर शोभित, बुद्धि प्रकाशित रहती है।
पावन ज्ञानमयी श्रुत गंगा, सदा हृदय में बहती है॥

शुद्ध भाव श्रुत मय जिनवाणी, मुक्ति का आधार है ।
स्वानुभूति ही सच्ची पूजा, जिनवाणी का सार है ॥६॥

हे मां तव सुत कुन्द कुन्द, गुरू तारण तरण महान हैं ।
ज्ञानी जन निज आत्म ध्यान धर, पाते पद निर्वाण हैं॥
आश्रय लो श्रुत ज्ञान भाव का, हो जाओ भव पार है ।
स्वानुभूति ही सच्ची पूजा, जिनवाणी का सार है ॥७॥

जड़ चेतन दोनों हैं न्यारे, यह जिनवर संदेश है ।
तन में रहता भी निज आतम, ज्ञान मयी परमेश है॥
तत्व सार तो इतना ही है, अन्य कथन विस्तार है ।
स्वानुभूति ही सच्ची पूजा, जिनवाणी का सार है ॥८॥

मिथ्या बुद्धि का तम हरने, ज्ञान रवि हो सरस्वती ।
सम्यक्ज्ञान करा दो मुझको, सुन लो अब मेरी विनती॥
अनेकान्त का सार समझ कर, हो जाऊं भव पार है ।
स्वानुभूति ही सच्ची पूजा, जिनवाणी का सार है ॥९॥

स्याद्वाद की गंगा से, कुज्ञान मैल धुल जाता है ।
ज्ञानी सम्यक् मति श्रुत बल से, केवल रवि प्रगटाता है॥
आत्म ज्ञान ही उपादेय है, बाकी जगत असार है ।
स्वानुभूति ही सच्ची पूजा, जिनवाणी का सार है ॥१०॥

भव दुःख से भयभीत भविक जन, शरण तिहारी आते हैं।
स्वयं ज्ञान मय होकर वे, भव सिन्धु से तर जाते हैं॥
आत्म ज्ञान मय जिन वचनों की, महिमा अपरम्पार है।
स्वानुभूति ही सच्ची पूजा, जिनवाणी का सार है ॥११॥

जयमाल

वीतराग जिन प्रभु का, यह सन्देश महान ।
चिदानन्द चैतन्य तुम, शाश्वत सिद्ध समान ॥१॥

द्वादशांग मय जिन वचन, श्रुत महान विस्तार ।
जीव जुदा पुद्गल जुदा, जिनवाणी का सार ॥२॥

करो सुबुद्धि जागरण, सम्यक् मति श्रुत ज्ञान ।
निश्चय जिनवाणी कही, तारण तरण महान ॥३॥

जिनवाणी की वन्दना, करूं त्रियोग सम्हार ।
ब्रह्मानंद में लीन हो, हो जाऊं भव पार ॥४॥

करो साधना ध्रौव्य की, बढ़े ज्ञान से ज्ञान ।
ज्ञान मयी पूजा यही, पाओ पद निर्वाण ॥५॥

वीतरागी जिनेन्द्र परमात्मा के द्वारा
जो अर्थ रूप से उपदिष्ट है तथा
गणधरों के द्वारा सूत्र रूप से गुंथित
है। स्व पर का बोध कराने वाले ऐसे श्रुतज्ञान
रूपी महान सिन्धु को
मैं भक्ति पूर्वक प्रणाम करता हूँ।

४. धर्म का स्वरूप

चेतन अचेतन द्रव्य का, संयोग यह संसार है ।
निश्चय सु दृष्टि से निहारो, आत्मा अविकार है ॥
रागादि से निर्लिप्त ध्रुव का, करो सत्श्रद्धान है ।
सत धर्म शुद्ध स्वभाव अपना, चेतना गुणवान है ॥१॥

आतम अनातम की परख ही, जगत में सत धर्म है ।
इस धर्म का आश्रय गहो, तब ही मिले शिव शर्म है ॥
जिनवर प्रभु कहते सदा ही, भेदज्ञान महान है ।
सत धर्म शुद्ध स्वभाव अपना, चेतना गुणवान है ॥२॥

जितनी शुभाशुभ क्रियायें, सब हेतु हैं भव भ्रमण की ।
यह देशना है वीतरागी, गुरू तारण तरण की ॥
निज में रहो ध्रुव को गहो, धर लो निजातम ध्यान है ।
सत धर्म शुद्ध स्वभाव अपना, चेतना गुणवान है ॥३॥

चिन्मयी शुद्ध स्वभाव में, जो भविक जन लवलीन हों ।
वे अन्तरात्मा शुद्ध दृष्टि, सब दुखों से हीन हों ॥
पल में स्वयं वे प्राप्त करते, ज्ञान मय निर्वाण हैं ।
सत धर्म शुद्ध स्वभाव अपना, चेतना गुणवान है ॥४॥

जिसमें ठहरता न कभी, शुभ अशुभ राग विकार है ।
वह भेद से भ्रम से परे, पर्याय के भी पार है ॥
जो है वही सो है वही, निज स्वानुभूति प्रमाण है ।
सत धर्म शुद्ध स्वभाव अपना, चेतना गुणवान है ॥५॥

सब जगत कहता है, अहिंसा परम धर्म महान है ।
निश्चय अहिंसा का परंतु, किसी को न ज्ञान है ॥

शुभ क्रियाओं को धर्म माने, यही भ्रम अज्ञान है ।
सत धर्म शुद्ध स्वभाव अपना, चेतना गुणवान है ॥६॥

जग तो क्रिया के अंधेरे में, कैद करके धर्म को ।
भूला स्वयं की चेतना, नित बांधता है कर्म को ॥
विपरीत दृष्टि में न होता, कभी निज कल्याण है ।
सत धर्म शुद्ध स्वभाव अपना, चेतना गुणवान है ॥७॥

मठ में रहो लुंचन करो, पढ़ लो बहुत पीछी धरो ।
पर धर्म किंचित् नहीं होगा, और न भव से तरो ॥
सब राग द्वेष विकल्प तज, ध्रुव की करो पहिचान है ।
सत धर्म शुद्ध स्वभाव अपना, चेतना गुणवान है ॥८॥

निज को स्वयं निज जान लो, पर को पराया मान लो ।
यह भेदज्ञान जहान में, निज धर्म है पहिचान लो ॥
इससे प्रगटता आत्मा में, अचल केवलज्ञान है ।
सत धर्म शुद्ध स्वभाव अपना, चेतना गुणवान है ॥९॥

है धर्म वस्तु स्वभाव सच्चा, जिन प्रभु ने यह कहा ।
हर द्रव्य अपने स्व चतुष्टय में, सदा ही बस रहा ॥
आतम सदा ज्योतिर्मयी, परिपूर्ण सिद्ध समान है ।
सत धर्म शुद्ध स्वभाव अपना, चेतना गुणवान है ॥१०॥

आनंद मय रहना सदा, बस यही सच्चा धर्म है ।
इस धर्म शुद्ध स्वभाव से, निर्जरित हों सब कर्म हैं ॥
रत रहो ब्रह्मानंद में, पाओ परम निर्वाण है ।
सत धर्म शुद्ध स्वभाव अपना, चेतना गुणवान है ॥११॥

जयमाल

वीतरागता धर्म है, सब शास्त्रों का सार ।
लीन रहो निज में स्वयं, समझाते गुरू तार ॥१॥

सत्य धर्म शिव पंथ है, निर्विकल्प निज भान ।
भेद ज्ञान कर जान लो, चेतन तत्व महान ॥२॥

कथनी करनी एक हो, तभी मिले शिव धाम ।
संयम तप मय हो सदा, ज्ञायक आतम राम ॥३॥

धर्म - धर्म कहते सभी, करते रहते कर्म ।
अपने को जाने बिना, होता कभी न धर्म ॥४॥

निज पर की पहिचान कर, धर लो आतम ध्यान ।
इसी धर्म पथ पर चलो, पाओ पद निर्वाण ॥५॥

धर्म आत्मा का शुद्ध स्वभाव, वस्तु स्वभाव है, धर्म किसी शुभ-अशुभ क्रिया काण्ड में नहीं होता । शुभ - अशुभ क्रियायें पुण्य-पाप बंध की कारण हैं । धर्म तो निर्विकल्पता शुद्धात्मानुभूति है, यही सत्य धर्म है जो आत्मा के समस्त दु:खों का अभाव कर परमात्म पद प्राप्त कराने वाला है । ऐसा महान सत्य धर्म अंतर आत्मानुभूति में सदा जयवंत हो ।

❄ ॐ शुद्धात्मने नमः ❄

त्रिविध आत्मा

आत्मा त्रिविधि प्रोक्तं च,
परू अंतरू बहिरप्पयं ।
परिणामं जं च तिस्टंते,
तस्यास्ति गुण संजुतं ।।

आत्मा को तीन प्रकार का कहा गया है - परमात्मा, अंतरात्मा, बहिरात्मा। जो आत्मा जिन परिणामों में रहता है उसको उन्हीं गुणों (भावों) से संयुक्त - परमात्मा, अंतरात्मा या बहिरात्मा कहा जाता है।

(श्री तारण तरण श्रावकाचार - ४८)

इस देह को ''मैं'' मानना,
सबसे बड़ा यह पाप है ।
सब पाप इसके पुत्र हैं,
सब पाप का यह बाप है ।।

- जब तक आत्मा अपने परम पुरूषार्थ को निज बल से प्रकट कर अनादि कालीन कर्म निमित्त जन्य विभावों और विकल्पों से अपने को नहीं निकालता तब तक इस संसार रूपी गहन वन में नाना दुःखों की परम्परा को प्राप्त होता है।
- मोक्ष मार्ग में स्थित वे हैं जो सम्यग्दृष्टि भेद विज्ञानी हैं।
- जब आत्मा अपने चित्त में कोई विकल्प न करे, निर्विकल्प स्वानुभूति में लीन हो उस समय आत्मा ही परमात्मा है।

१. संसारी बहिरात्मा

जिस जीव की इस देह में, एकत्व की है मान्यता ।
वह कहाता बहिरात्मा, निज रूप जो नहीं जानता ॥
जड़ देह से एकत्व की, ग्रन्थि को जो न खोलता ।
मिथ्यात्व वश बहिरात्मा, चारों गति में डोलता ॥१॥

पर पुद्गलों को देखता, कर्तृत्व पर का ठानता ।
होकर अहं में चूर, गुरू की सीख भी न मानता ॥
मैं न करूं तो कुछ न होवे, वचन ऐसे बोलता ।
मिथ्यात्व वश बहिरात्मा, चारों गति में डोलता ॥२॥

मैं करूं पर का परिणमन, जिसको विकल्प अनंत हैं ।
पर सोचता इक क्षण नहीं, क्या कह रहे अरिहंत हैं ॥
चैतन्य अनुभवता नहीं, अमृत में विष को घोलता ।
मिथ्यात्व वश बहिरात्मा, चारों गति में डोलता ॥३॥

तिर्यंच गति में स्वर्ग में, जाता कभी है नर्क में ।
होता मनुष तो कुबुद्धि वश, फंसा रहता तर्क में ॥
कुज्ञान खोटी तराजू में, पत्थरों को तौलता ।
मिथ्यात्व वश बहिरात्मा, चारों गति में डोलता ॥४॥

है तीव्र जिसकी गृद्धता, संसार तन अरू भोग में ।
वह फंसा रहता रात दिन, उन भोग के ही रोग में ॥
इस तरह केला थंभ के, छिलके ही छिलके छोलता ।
मिथ्यात्व वश बहिरात्मा, चारों गति में डोलता ॥५॥

सत्धर्म की श्रद्धा नहीं, न कर्म का विश्वास है ।
थोड़ा बहुत कुछ करे तो, वह पुण्य का ही दास है ॥
इस तरह खुद के ही ऊपर, कर्म की रज ओलता ।
मिथ्यात्व वश बहिरात्मा, चारों गति में डोलता ॥५॥

इस देह को ''मैं'' मानना, सबसे बड़ा यह पाप है ।
सब पाप इसके पुत्र हैं, सब पाप का यह बाप है ॥
प्रज्ञा मयी छैनी से ज्ञानी, मोह पर्वत कोलता ।
मिथ्यात्व वश बहिरात्मा, चारों गति में डोलता ॥७॥

दृष्टि की विपरीतता वश, धर्म अमृत न सुहाये ।
ज्वर ग्रसित व्यक्ति को जैसे, मधुर रस भी नहीं भाये ॥
कर्म के वश जीव आंखें, ज्ञान की नहीं खोलता ।
मिथ्यात्व वश बहिरात्मा, चारों गति में डोलता ॥८॥

पर परिणमाने को कहे कि, मैं करूंगा मैं करूंगा ।
पर एक क्षण भी सोचता नहीं, मैं मरूंगा मैं मरूंगा ॥
अहं से परिपूर्ण, पर कर्तृत्व वाणी बोलता ।
मिथ्यात्व वश बहिरात्मा, चारों गति में डोलता ॥९॥

संयोग अपना था नहीं, न है, न होगा फिर कभी ।
पर मूढ़ नित यह मानता, सब ''मैं'' तथा मेरा सभी ॥
अज्ञान वश हो आत्मा में, मोह का विष घोलता ।
मिथ्यात्व वश बहिरात्मा, चारों गति में डोलता ॥१०॥

मिथ्यात्व के कारण अनेकों, पाप करते जीव हैं ।
संयम भवन कैसे बने, मिथ्यात्व की जब नींव है ॥
अज्ञान मय प्राणी कभी नहीं, ज्ञान गठरी खोलता ।
मिथ्यात्व वश बहिरात्मा, चारों गति में डोलता ॥११॥

मिथ्यात्व और अनन्त अनुबंधी, कषाय युगल रहे ।
फिर तत्व अश्रद्धान व, श्रद्धा अतत्वों की गहे ॥
वह नहीं ब्रह्मानन्द पाता, सत्य जो नहीं बोलता ।
मिथ्यात्व वश बहिरात्मा, चारों गति में डोलता ॥१२॥

२. धन्य अन्तरात्मा

इस देह से मैं सदा न्यारा, शुद्ध निर्मल आत्मा ।
परिपूर्ण हूं निज में स्वयं, विज्ञान घन परमात्मा ॥
रागादि से हो दूर जिसने, शुद्धता निज की लखी ।
वह अन्तरात्मा धन्य है, चैतन्य का जो पारखी ॥१॥

मैं मन नहीं, मैं तन नहीं, जड़ वचन भी मैं हूं नहीं ।
त्रय योग से सब कर्म से, जो भिन्न चेतन, मैं वही ॥
चिन्मात्र निज ध्रुव-धाम पर, दृष्टि सदा जिसने रखी ।
वह अन्तरात्मा धन्य है, चैतन्य का जो पारखी ॥२॥

है अन्तरात्मा जौहरी जो, ज्ञान वैभव को सम्हाले ।
पाषाण तन के बीच से, चैतन्य हीरा को निकाले ॥
स्वानुभव में आ रही, महिमा समय के सार की ।
वह अन्तरात्मा धन्य है, चैतन्य का जो पारखी ॥३॥

पण्डित वही ज्ञानी वही, जो हुआ शुद्ध विवेक से ।
छूटी समस्त अनेकता, नाता हुआ है एक से ॥
निजात्मा आनंद अमृत मयी, अनुभव में चखी ।
वह अन्तरात्मा धन्य है, चैतन्य का जो पारखी ॥४॥

अरिहंत सिद्धों सम निजातम, देह में ही बस रही ।
है शुद्ध ज्ञानानंद मय, तारण - तरण गुरू ने कही ॥
जो जानते मम आत्मा, अरिहंत सिद्धों सारखी ।
वह अन्तरात्मा धन्य है, चैतन्य का जो पारखी ॥५॥

ज्यों अग्नि रहती काष्ठ में, घी दूध में सर्वत्र है ।
ज्यों गंध रहती पुष्प में, आकाश में ज्यों छत्र है ॥
त्यों आत्मा सर्वत्र तन में, भिन्न जिसने भी लखी ।
वह अन्तरात्मा धन्य है, चैतन्य का जो पारखी ॥६॥

मैं क्रिया भावों से तथा, पर्याय के भी पार हूँ ।
मैं ब्रह्म हूँ परमात्मा, चिन्मय समय का सार हूँ ॥
चल दिया मुक्ति मार्ग पर, है पात्रता जिसकी पकी ।
वह अन्तरात्मा धन्य है, चैतन्य का जो पारखी ॥७॥

समकिती ज्ञानी किसी भी, भव मांहि कैसा ही रहे ।
निज पर पिछाने सदा ही, पर्याय में वह न बहे ॥
समता रसायन पिये नित, फिर हो भले ही नारकी ।
वह अन्तरात्मा धन्य है, चैतन्य का जो पारखी ॥८॥

जिसने स्वयं अनुभव किया, जग परिणमन स्वतंत्र है ।
सब द्रव्य हैं स्वाधीन, जग में कोई न परतंत्र है ॥
मैं स्वयं का स्वामी स्वयं, श्रद्धा सही निरधार की ।
वह अन्तरात्मा धन्य है, चैतन्य का जो पारखी ॥९॥

जिस जीव का जिस द्रव्य का, जिस समय में जो हो रहा ।
निश्चित सभी क्रमबद्ध है, अज्ञान वश तू रो रहा ॥
ज्ञानी नहीं कर्ता न भोक्ता, रूचि नहीं संसार की ।
वह अन्तरात्मा धन्य है, चैतन्य का जो पारखी ॥१०॥

पढ़-पढ़ अनेकों पोथियां, अरू पुराणों को जग मुआ ।
लेकिन अभी तक कोई भी, न ज्ञानमय पंडित हुआ ॥
जो पढ़े आत्मा ढाई अक्षर, तजे दृष्टि विकार की ।
वह अन्तरात्मा धन्य है, चैतन्य का जो पारखी ॥११॥

सद्गुरू शिक्षा मानकर, निज आत्मा को जान लो ।
होकर विवेकी भेदज्ञानी, तत्व निर्णय ठान लो ॥
जो रहे ब्रह्मानंद मय, है देशना गुरू तार की ।
वह अन्तरात्मा धन्य है, चैतन्य का जो पारखी ॥१२॥

ज्ञान की शक्ति महान

ज्ञान की शक्ति महान जगत में,
ज्ञान की शक्ति महान ॥
आत्म ज्ञान ही ज्ञान कहाता, सुख शांति मुक्ति का दाता।
शेष सभी अज्ञान, जगत में.....
भेद ज्ञान, तत्व निर्णय होता, सारा भ्रम अज्ञान है खोता।
हो सम्यक् दर्शन ज्ञान, जगत में .....
वस्तु स्वरूप सामने दिखता, माया मोह वहां न टिकता।
होता दृढ़ निश्चय श्रद्धान, जगत में .....
द्रव्य दृष्टि सब राग तोड़ती, शुद्ध दृष्टि सम भाव जोड़ती।
मति श्रुत हों सुज्ञान, जगत में .....
अवधिज्ञान,मन: पर्यय जगता, घातिया कर्म स्वयं ही भगता।
प्रगटे केवलज्ञान, जगत में .....
वीतराग सर्वज्ञ हितंकर, हो अरिहंत प्रभु तीर्थंकर।
कहलाते भगवान, जगत में .....
शेष अघातिया कर्म क्षय होते, आतम सिद्ध स्वरूप में सोते।
पाते पद निर्वाण, जगत में .....
ज्ञानानंद स्वभावी आतम, आतम शुद्धातम परमातम।
बनता खुद भगवान, जगत में .....

अरिहंत सिद्ध परमात्मा प्रमाण के लिये हैं, पूजा के लिये नहीं। उन जैसे बनने के लिये स्वयं का पुरूषार्थ, भेद ज्ञान तत्व निर्णय ही कार्यकारी प्रयोजनीय है।

३. आत्मा ही परमात्मा

चिद्रूप की पहिचान तुम, सत्यार्थ दृष्टि से करो।
जो रूप है अपना त्रिकाली, उसे अब चित में धरो॥
चैतन्यता से है विभूषित, सदा ही निज आत्मा।
सद्गुरू तारण तरण कहते, तू स्वयं परमात्मा ॥१॥

होवे न कोई विकल्प जिस क्षण, निर्विकल्प दशा रहे।
तब तू स्वयं परमात्मा, जब ज्ञान मय अनुभव गहे॥
हे आत्मन् ! स्वीकार करले, शुद्ध हूं शुद्धात्मा।
सद्गुरू तारण तरण कहते, तू स्वयं परमात्मा ॥२॥

अरिहंत को तू देख ले, और सिद्ध को भी देख ले।
अब दृष्टि अपनी ओर कर तू, स्वयं को भी लेख ले॥
है शुद्ध द्रव्य स्वभाव से, उन सदृश ही मुक्ति रमा।
सद्गुरू तारण तरण कहते, तू स्वयं परमात्मा ॥३॥

मैं शुद्ध हूँ परमात्मा, यह लक्ष्य रख निज रूप का।
तब बनेगा तू वीतरागी, अनुभवी चिद्रूप का॥
बस एक निज ध्रुव धाम पर, दृष्टि को दृढ़ता से जमा।
सद्गुरू तारण तरण कहते, तू स्वयं परमात्मा ॥४॥

अरिहंत सिद्धों के तरफ का, लक्ष्य भी अब छोड़ दे।
एकाग्र हो निज रूप में, उपयोग अपना जोड़ दे॥
फिर देख यह दर्शन अनंता, ज्ञान वीरज सुख क्षमा।
सद्गुरू तारण तरण कहते, तू स्वयं परमात्मा ॥५॥

जब तक रहेगा लक्ष्य पर का, राग छूटेगा नहीं।
बिन राग के छूटे जगत का, बंध टूटेगा नहीं॥
चल हो स्वयं में लीन अब, दु:खमय करम धन मत कमा।
सद्गुरू तारण तरण कहते, तू स्वयं परमात्मा ॥६॥

परमात्मा की खोज करते, जगत के सब लोग बाहर।
देख लें इक क्षण स्वयं को, तब तो यह हो जाए जाहर॥
मुझको मेरी खोज थी, पर भ्रमित था, जिनवाणी मां।
सद्गुरू तारण तरण कहते, तू स्वयं परमात्मा ॥७॥

मिलता न वह चैत्यालयों, गिरजाघरों या मंदिरों में।
गुरूद्वारा शिवालय व, मस्जिदों में न घरों में॥
वह प्रभु बैठा है हृदय में, एक क्षण निज में समा।
सद्गुरू तारण तरण कहते, तू स्वयं परमात्मा ॥८॥

उदधि पर्वत कंदराओं में, जो प्रभु को ढूंढते।
पर एक क्षण भी निजातम, अनुभवन में न डूबते॥
भूले हुए भगवान वे सब, बने हैं बहिरात्मा।
सद्गुरू तारण तरण कहते, तू स्वयं परमात्मा ॥९॥

बाहर भटकना छोड़ दे, दृष्टि हटा जग से स्वयं।
परिवार से तन मन से हटकर, तोड़ दे बुद्धि का भ्रम॥
चित अहं से भी दूर जो है, वही है शुद्धात्मा।
सद्गुरू तारण तरण कहते, तू स्वयं परमात्मा ॥१०॥

चैतन्य अनुभव का विषय, वह ज्ञान का घन पिण्ड है।
आनन्द अमृत से भरा, ध्रुव धाम एक अखंड है॥
पर वस्तु के संयोग से, नित भिन्न रहता आत्मा।
सद्गुरू तारण तरण कहते, तू स्वयं परमात्मा ॥११॥

निज आत्मा में ही छिपा, परमात्मा आनन्द मय।
इस सत्य का श्रद्धान, अनुभव करो होंगे कर्म क्षय॥
अविकार ब्रह्मानन्द मय, ध्रुव धाम निज शुद्धात्मा।
सद्गुरू तारण तरण कहते, तू स्वयं परमात्मा ॥१२॥

यथार्थ जीवन अर्थात् साक्षी भाव

यदि कोई व्यक्ति कामिनी को या कंचन को बुरा मानकर उनसे भागने लगे तो वह पायेगा कि चौबीसों घंटे वे ही विचार उसे घेरे हुए हैं। सोते जागते वह उनमें ही डूबा रहेगा और जितना वह स्वयं को उनमें डूबा हुआ पायेगा – उतना ही भयभीत होगा।

जिस विचार से आप लड़ते हैं, वही विचार आपका आमंत्रण स्वीकार कर लेता है। जिससे आप लड़ते हैं, डरते हैं, मन उन्हीं विचारों को बारम्बार सामने लाता है।

इसलिए विचार से, मन से, न तो डरना है, न उसे डराना है, न उसे पकड़ना है, न उसे धक्का देना है। उसे तो मात्र देखना है। निश्चय ही इसमें बड़ी सजगता दृढ़ता और हिम्मत की जरूरत है क्योंकि बुरा भी विचार आयेगा और आदत बस मन होगा कि उसे पकड़ लें।

इस मन को यह जो पकड़ने और धक्का देने की प्रवृत्ति है, यह सहज आदत है। बोधपूर्वक स्मृतिपूर्वक अगर कोई उसे देखेगा साक्षी रहेगा तो यह वृत्ति धीरे-धीरे शिथिल हो जायेगी और विचार को, मन को, देखने में समर्थ हो जायेगा और जो व्यक्ति विचार को देखने में समर्थ हो जायेगा, वह वस्तुत: विचार से मुक्त होने में भी समर्थ हो जाता है।

❀ जीवन जीने के सूत्र ❀

१. धर्म – कर्म में कोई किसी का साथी नहीं है।
२. जो जैसा करेगा,उसका फल उसी को भोगना पड़ेगा।
३. जीव अकेला आया है और अकेला जायेगा।
४. संसार की कोई वस्तु (घर–शरीर–परिवार) न साथ लाया है, न साथ ले जायेगा।
५. जो जन्मा है वह अवश्य मरेगा।
६. एक दिन हमें भी मरना है इसका अवश्य ध्यान रखो।
७. राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी–अपनी बार॥
८. दल–बल देवी देवता, मात–पिता परिवार।
मरती बिरिया जीव को, कोई न राखनहार॥
९. आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय।
यूं कबहूं या जीव को, साथी सगा न कोय॥
१० प्रति समय सुमरण करो, वृथा समय मत खोओ।
निज स्वभाव में लीन हो, खुद परमातम होओ॥
११. यह मानुष पर्याय, सुकुल सुनिवो जिनवाणी।
इह विधि गये न मिले, सुमणि ज्यों उदधि समानी॥
१२. बड़े भाग्य मानुष तन पावा।
सुर दुर्लभ सद ग्रन्थन गावा॥
१३. सो नर निन्दक मंद मति, आतम हन गति जाय।
जो न तरइ भव सागर, नर समाज अस पाय॥
१४. काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।
पल में परलय होयगी, बहुरि करेगा कब॥
१५. अच्छे कामों में देर मत करो ''शुभस्य शीघ्रम्''।

१६. बुरे कामों में जल्दी मत करो, ठहरो बचो डरो।
१७. पाप से दुर्गति – पुण्य से सद्गति और धर्म से मुक्ति होती है।
१८. हाथ का दिया साथ जाता है, बाकी सब यहीं रह जाता है।
१९. धन की तो गति तीन हैं, दान भोग अरू नाश।
दान भोग जो न करे, निश्चय होय विनाश॥
२०. पाप–बेईमानी से कमाया धन बुरे कामों में जाता है।
२१. आनन्द से जीने के लिये अपना आत्मबल जगाओ, निर्भय बनो।
२२. सुखी रहने के लिये – समता शान्ति आवश्यक है।
२३. सर्वप्रिय बनने के लिये–सबसे मैत्री,प्रमोद भाव रखो।
२४. निराकुलता में रहने के लिये – तत्व निर्णय करो।
२५. सम्मान चाहते हो तो, हमेशा दूसरों का सम्मान करो।
२६. बड़े बनना चाहते हो तो दया दान परोपकार करो।
२७. धन चाहते हो तो संयमित जीवन बनाओ, प्रतिदिन मन्दिर जाओ, दान करो, शुभ भाव रखो और सत्यता ईमानदारी से व्यापार करो।
२८. आकुल व्याकुल चिन्तित भयभीत होना ही मरना है।
२९. विभाव परिणमन, संकल्प–विकल्प ही भाव मरण है।
३०. पर का विचार, पर की चिन्ता, मन की कल्पना, विकल्प,यह सब आकुलता अशान्ति और दुःख के कारण हैं।
३१. तात तीन अति प्रबल खल, क्रोध, मोह और लोभ।
इनके चित्त में उपजते, होत जीव को क्षोभ॥

३२. लोभी अपने पुण्य का फल नहीं भोगता, आशा तृष्णा चाह में ही मरता रहता है, नकटा बेशरम होता है।

३३. मोही को अपने हिताहित का कोई विचार नहीं रहता, अन्धा पागल बेहोश, भयभीत, चिन्तित रहता है।

३४. जो मिला है – उसका सदुपयोग करने वाला विवेकवान है। दुरूपयोग करने वाला अज्ञानी मूर्ख है।

३५. सच्चे देव गुरू धर्म की श्रद्धा, सत्संग स्वाध्याय सामायिक करना, सदाचारी जीवन होना, सम्यग्दर्शन की पात्रता है।

३६. भेदज्ञान के अभाव में ही भय-चिन्ता घबराहट होती है।

३७. जिम्मेदारी, रिश्तेदारी – दुनियांदारी जिसके गले जितनी बंधी है, वह उतना चिन्तित परेशान रहेगा।

३८. चाह से चिन्ता, मोह से भय और दु:ख, राग से संकल्प-विकल्प होते हैं।

३९. तीन लोक के नाथ को, नहीं स्वयं का ज्ञान।
भीख मांगता फिर रहा, बना हुआ हैवान ।।

४०. ज्ञानी सम्यग्दृष्टि मुक्ति चाहता है और वह उसके सत्पुरूषार्थ से मिलती है। अज्ञानी – मिथ्यादृष्टि मन की तृप्ति चाहता है और वह कभी होती नहीं है।

४१. पाप के उदय में जीव धन के पीछे मरता है और पुण्य के उदय में विषयों में रमता है।

४२. अध्यात्म का अर्थ है – अपने स्वरूप को जानना।

४३. अध्यात्म का फल – जीवन में सुख शान्ति होना।

४४. ज्यों-ज्यों भौतिक प्रगति हो रही है, मानव की मानवता विलुप्त होती जा रही है।

४५. धर्म के नाम पर – परस्पर घृणा का प्रचार करने वाले तथा युद्ध भड़काने वाले धर्म के तत्व एवं उद्देश्य को नहीं समझते।

४६. सन्त – किसी एक धर्म के खूंटे से नहीं बंधते हैं, सत्य का सत्कार करते हैं, वह चाहे जहां भी प्राप्त हो।

४७. निराशा को भगाओ, आशा को जगाओ, आज और अभी जगाओ – जीवन का यही सन्देश है।

४८. जो जीवन में रूचि नहीं लेता है, उसे जीने का अधिकार नहीं है।

४९. जहां आत्म श्रद्धान है तथा कर्मों का विश्वास है, वहां चिन्ता और भय नहीं रह सकते।

५०. परमात्मा पर श्रद्धा और कर्मो का विश्वास करने वाले को कभी भय चिन्ता नहीं हो सकते।

५१. प्रसन्न-हंसमुख और मस्त स्वभाव के बिना, आप चिड़चिड़े क्रोधी, दु:खी और रक्तचाप आदि रोगों के शिकार हो जायेंगे।

५२. व्यर्थ ही जिम्मेदारी बड़प्पन का बोझ लादकर, हम खिल-खिलाकर हंसना भूल गये – गमगीन रहने लगे हैं।

५३. मनुष्य का भविष्य हाथ की रेखाओं और ग्रहों द्वारा कदापि बांधा नहीं जा सकता।

५४. मनुष्य की इच्छा शक्ति और पुरूषार्थ ही मनुष्य का भविष्य बनाती है।

५५. शास्त्र की बात भी बुद्धि रहित होकर मानने से धर्म की हानि होती है।

५६. विवेक को त्यागकर धर्म भी धर्म नहीं रहता।

५७. उलझन और समस्या बाहर संसार में नहीं हैं, मन में हैं, बाहर तो केवल परिस्थितियां हैं।

५८. निश्चिन्त-प्रफुल्ल मन स्वर्ग है तथा उलझा हुआ मन नरक है, जिसके हम स्वयं जिम्मेदार हैं।

५९. जब तक संकट न आये, उसकी चिन्ता करना निराधार है और जब संकट आ जाये तब भय न करें, उत्साह से उसका सामना करें।

६०. वास्तव में कार्य का भार हमें नहीं थकाता है, अरूचि चिन्ता और भय थकाते हैं।

६१. धन कमाना बुरा नहीं है, धन का दुरूपयोग करना बुरा है, शोषण बुरा है, धन का मोह बुरा है, धन का अहंकार बुरा है।

६२. मंजिल पै जिन्हें जाना है, वे शिकवे नहीं करते। शिकवों में जो उलझे हैं, वे पहुंचा नहीं करते ॥

६३. संयम, सेवा, सत्संग और स्वाध्याय आत्मोन्नति के सोपान हैं।

६४. कमजोर पिट जाता है पर सताने वाला मिट जाता है।

६५. दूसरों के स्वभाव को पहिचानकर तथा दूसरों पर प्रेम द्धारा विजय पाकर ही आप उनसे काम ले सकते हैं तथा स्वयं भी प्रसन्न रह सकते हैं।

६६. बच्चे अपनी शक्ति और क्षमता के अनुरूप ही विकसित होंगे न कि माता-पिता की इच्छा और योजनाओं के अनुरूप।

६७. प्रेम करना ही पर्याप्त नहीं है, प्रेम पूर्ण व्यवहार होना भी आवश्यक है।

६८. जीवन की समस्यायें एक चुनौती है, जिसे हम मनोबल-नीति बल और पुरूषार्थ द्धारा जीत सकते हैं।

६९. अपने भावों की संभाल रखो, भाव ही बंध और मोक्ष के कारण हैं।

७०. सिद्धान्त में दृढ़ रहकर भी व्यवहार में मृदु एवं विनम्र रहिये।

७१. व्यवहार कुशलता का उद्देश्य - व्यवहार में शुद्धि होता है। परस्पर व्यवहार में अपने से अधिक दूसरों को महत्व देना, दूसरों को सहयोग देना तथा सामाजिक जीवन में पवित्रता एवं मधुरता उत्पन्न करना।

७२. हम एक सधे हुए मन से कोलाहल और भाग दौड़ के बीच भी सुख और शान्ति में रह सकते हैं।

७३. मन में दीवार खिंच जाने पर मकान में दीवार खिंच जाती है, सहनशीलता-क्षमाशीलता-उदारता और गंभीरता से काम लें।

७४. परोपकार रत तथा मधुर वातावरण से युक्त परिवार धरती का स्वर्ग होता है।

७५. आपके हृदय के सच्चे प्रेमभाव-करूणाभाव-क्षमाभाव का प्रभाव दूसरों पर अवश्य पड़ता है।

७६. उज्ज्वल भविष्य की आशा करो - उज्ज्वल भविष्य की कल्पना करो-भविष्य उज्ज्वल हो जायेगा।

७७. जीवन में सुख की समुज्ज्वल कल्पना करो, आशा

और विश्वास के साथ आगे बढ़े चलो, जीवन एक सुख का सिंधु हो जायेगा।

७८. आध्यात्मिकता मनुष्य को पलायन नहीं सिखाती है, बल्कि उसके अन्तर जगत को सुव्यवस्थित कर उसे कर्म की ओर प्रवृत्त करती है तथा उसे समभाव जनित स्थायी सुख एवं शान्ति प्रदान करती है।

७९. अध्यात्म एक विज्ञान है, एक कला है, एक दर्शन है, अध्यात्म मानव के जीवन में, जीने की कला के मूल रहस्य को उद्घाटित कर देता है।

८०. सोलहवीं शताब्दी के अध्यात्मवादी संत श्री जिन तारण स्वामी ने यथार्थ मार्ग बताया है –
एतत् सम्यक्त्व पूजस्य, पूजा पूज्य समाचरेत्।
मुक्ति श्रियं पथं शुद्धं, व्यवहार निश्चय शाश्वतं॥
इस प्रकार सच्ची पूजा का यह स्वरूप है कि पूज्य के समान आचरण होना ही सच्ची पूजा है। मोक्ष लक्ष्मी को पाने का शुद्ध मार्ग निश्चय व्यवहार से शाश्वत होता है।

८१. कथनी करनी भिन्न जहां, धर्म नहीं पाखंड वहां।

८२. अध्यात्म साधना का मार्ग – स्वाध्याय, सत्संग, संयम, ज्ञान, ध्यान है।

८३. जाग्रत अवस्था में ध्यान अन्तरंग का एक गहन सुख होता है, जो अनिर्वचनीय है।

८४. ध्यान कोई तन्त्र – मन्त्र नहीं है। ध्यान एक साधना है जिसके द्वारा हम अपने भीतर आत्मानन्द उपजाते हैं।

८५. मौन, ध्यान का प्रथम चरण है। मौन का अर्थ–बाह्य

संचरण छोड़कर अन्त: संचरण करना। मौन का अर्थ है– संयम के द्वारा धीरे–धीरे इन्द्रियों तथा मन के व्यापार का शमन होना (दमन नहीं)।

८६. हमारे भीतर गहरे स्तर पर आनन्द स्वरूप आत्मा है जो हमारा निज स्वरूप है। अभी मन उसकी ओर उन्मुख न होकर बाहर भटक रहा है और सुखाभास को सुख समझ रहा है।

८७. मौन की सफलता होने पर ही ध्यान की सफलता होती है।

८८. मौन व्रत धारण करने से राग द्वेषादि शीघ्र नष्ट हो जाते हैं – मौन से गुण राशि प्राप्त होती है – मौन से ज्ञान प्राप्त होता है – मौन से उत्तम श्रुतज्ञान प्राप्त होता है – मौन से केवलज्ञान प्रकट होता है।

८९. साधक मौन ग्रहण के समय वर्तमान घटनाओं में रूचि न ले, कल की चिन्ता न करे – और भविष्य की योजनायें न बनाये।

९०. यथा संभव मौन के समय शान्तचित्त होकर ध्यान और मंत्र जप ही करना चाहिये।

९१. मौन एवं अन्तर्मुखी होने पर ही तत्व दर्शन होता है।

९२. ध्यान द्वारा गहरे स्तर पर चेतना की निर्ग्रन्थ निर्मल अखण्ड सत्ता का दर्शन होता है।

९३. ध्यान द्वारा हम आत्म साक्षात्कार करते हैं, आत्म ज्योति का दर्शन करते हैं अथवा यों कहिये कि आत्म तत्व – परमात्म तत्व में लय हो जाता है।

९४. ध्यान की चरम अवस्था में साधक आनन्द महोदधि में निमग्न हो जाता है।

१५. ध्यान की अवस्था में शरीर अत्यन्त भारहीन मन सूक्ष्म और श्वास-प्रश्वास अलक्षित प्रतीत होती है।

१६. साधक ध्यान का अभ्यास करने से दैनिक जीवनचर्या में मोह से विमुक्त हो जाता है और ज्यों-ज्यों वह मोह से विमुक्त होता है त्यों-त्यों उसे ध्यान में सफलता मिलती है।

१७. ध्यान जनित आनन्द की अनुभूति होने पर व्यक्ति को भौतिक जगत के कुटिलता-घृणा-स्वार्थ-परिग्रह-विषय-भोग आदि नीरस एवं निरर्थक प्रतीत होने लगते हैं।

१८. भगवान महावीर कषाय मुक्ति पर बल डालते हैं।

११. योग का अर्थ है - मन को जो हमारे विचारों और भावनाओं की हलचल का कारण है - जीवन के मूल स्रोत आत्मतत्व (चेतनतत्व) से जोड़ना।

१००. हमारा आत्मस्थ होना, आत्मानन्द का सूक्ष्म अनुभव करना है।

१०१. अस्त-व्यस्त ध्वस्त एवं भग्न मन को शांत-सुखी एवं स्वस्थ करने के लिये ध्यान सर्वश्रेष्ठ औषधि है।

१०२. सूक्ष्म जगत की अपेक्षा स्थूल जगत को अधिक महत्व देने से मोह उत्पन्न होता है। जो हमारी शान्ति और संतुलन को भंग कर देता है।

१०३. मोह के कारण धन-पद-सत्ता-यश आदि की इच्छायें हमें सताने लगती हैं और इच्छित वस्तुओं का अभाव दु:ख बन कर खटकने लगता है।

१०४. इच्छा (काम) से मोह और मोह से इच्छा उद्दीप्त होते हैं। इच्छा से ही आशा, निराशा, चिन्ता, भय भी

उत्पन्न होते हैं।

१०५. इच्छाओं और भावों को समझने पर ही उनका समाधान करना संभव है।

१०६. बिन संतोष न काम नसाहीं ।
काम अछत सुख सपनेहुं नाहीं ।।

१०७. ध्यान के अभ्यास से मनुष्य को मानसिक तनाव से मुक्ति मिल जाती है।

१०८. अनादिकालीन संसार परिभ्रमण जन्म-मरण का कारण, अपना अज्ञान (स्वरूप का विस्मरण) और मोह है।

१०९. यह शरीर ही मैं हूं, यह शरीरादि मेरे हैं, मैं इन सबका कर्ता हूं, यह मिथ्या मान्यता ही संसार परिभ्रमण का कारण है।

११०. वर्तमान मनुष्य भव में हमें तीन शुभ योग मिले हैं - बुद्धि, स्वस्थ शरीर और पुण्य का उदय तथा इनका सदुपयोग - दुरूपयोग करने की पूर्ण स्वतंत्रता है।

१११. बुद्धि का दुरूपयोग करने के कारण वर्तमान जीवन को अशांत, दु:खमय बनाये हैं और भविष्य के लिये अशुभ कर्मबन्ध करके दुर्गति के पात्र बन रहे हैं।

११२. पर का विचार करना ही बुद्धि का दुरूपयोग है, इससे ही भय - चिन्ता - आकुलता घबराहट होती है।

११३. बुद्धि का सदुपयोग करके हम वर्तमान जीवन सुख शांति आनंदमय बना सकते हैं और भविष्य में सद्गति मुक्ति पा सकते हैं।

११४. बुद्धि का सदुपयोग भेद ज्ञान-तत्व निर्णय करने में है।

११५. भेदज्ञान – इस शरीरादि से भिन्न मैं एक अखंड अविनाशी चैतन्य तत्व भगवान आत्मा हूँ यह शरीरादि मैं नहीं और यह मेरे नहीं।

११६. तत्व निर्णय – जिस समय जिस जीव का जिस द्रव्य का जैसा जो कुछ होना है वह अपनी तत्समय की योग्यतानुसार हो रहा है और होगा,उसे कोई भी टाल फेर बदल सकता नहीं ।

११७. भेदज्ञान तत्व निर्णय करने से वर्तमान जीवन सुख शान्ति मय होता है और इसी से सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति होती है, जो मुक्ति का कारण है।

११८. शरीर का दुरूपयोग – पाप–विषय–कषाय में रत रहना है, जिससे वर्तमान जीवन दु:खमय और भविष्य अन्धकारमय बनता है।

११९. शरीर का सदुपयोग, सदाचार, संयम, तप, दया, दान परोपकार करने में है, जिससे वर्तमान जीवन सुखमय यशस्वी बनता है और भविष्य में सद्गति और मुक्ति मिलती है।

१२०. पुण्य के उदय का दुरूपयोग – अन्याय, अनीति, अत्याचार, अय्याशी करने में है, जिसका परिणाम दु:ख और दुर्गति है।

१२१. पुण्य के उदय का सदुपयोग दया, दान, परोपकार, धर्म प्रभावना, सत्यता, ईमानदारी का व्यवहार करने में है, जिसका परिणाम सुख–शान्ति यश सद्गति है।

१२२. तन से सेवा कीजिये, मन से भले विचार, धन से इस

संसार में करिये पर उपकार, यही है मानवता का सार।

१२३. मानुष तो विवेकवान, नहीं तो पशु के समान।

१२४. आयु का अन्त, आयु का बंध, पाप का उदय हमारे जीवन में कभी भी आ सकता है फिर हम चाहते हुये भी कुछ नहीं कर सकते।

१२५. इमिजानि, आलसहानि, साहसठानि यह सिख आदरो।
जब लों न रोग जरा गहे,तब लों झटिति निजहित करो॥

१२६. आगाह अपनी मौत का कोई वसर नहीं ।
सामान सौ बरस का है पल की खबर नहीं ॥

१२७. हाथ का पक्का, लंगोट का सच्चा, मुख का संयमी जग जीतता है।

१२८. जीव की दुर्दशा के तीन कारण– १. कर्ता धर्तापना २. अच्छा बुरा मानना ३. कुछ भी चाहना।

१२९. तीन पांच मत करना, वरना मारे जाओगे।
संसार में तीन मिथ्यात्व, पांच पाप करोगे तो दुर्गति जाओगे। तीन रत्नत्रय – पांच परमेष्ठी पद धारण करोगे तो मुक्ति पाओगे।

१३०. आत्म कल्याण के बाधक कारण – विवेकहीनता, लोकमूढ़ता पंथ व्यामोह और साम्प्रदायिकता।

१३१. आवश्यकता से आकुलता होती है – समस्या से विकल्प होते हैं – जिम्मेदारी से चिन्ता होती है।

१३२. जितनी अपनी आवश्यकतायें कम होंगी उतने ही निराकुल आनन्द में रहोगे।

१३३. संसार का परिणमन – काल के अनुसार है।

कार्य का होना – तत्समय की योग्यतानुसार है। जीवों का परिणमन, अपनी–अपनी पात्रतानुसार है।

१३४. मोह के सद्भाव में – अनिष्ट की शंका कुशंका होती है। राग के सद्भाव में इष्ट अनिष्ट के संकल्प विकल्प होते हैं। द्वेष के सद्भाव में क्रोध घृणा–बैर विरोध होते हैं।

१३५. विचारवान पुरूष के लिये अपने स्वरूपानुसन्धान में प्रमाद करने से बढ़कर और कोई अनर्थ नहीं है क्योंकि इसी से मोह होता है – मोह से अज्ञान – अज्ञान से बन्धन तथा बन्धन से क्लेश दु:ख की प्राप्ति होती है।

१३६. मुमुक्षु पुरूष के लिये आत्म तत्व के ज्ञान को छोड़कर संसार बन्धन से छूटने का और कोई मार्ग नहीं है।

१३७. दु:ख के कारण और मोहरूप अनात्म चिन्तन को छोड़कर आनन्द स्वरूप आत्मा का चिन्तन करो जो साक्षात् मुक्ति का कारण है।

१३८. आज इन्सान है पर इन्सानियत नहीं है, शिक्षा है पर सदाचार नहीं है।

१३९. इस समय शिक्षक शिक्षार्थी और शिक्षा यह तीनों अंग आत्मस्वरूप चरित्र से विमुख हैं।

१४०. आज शिक्षा का उद्देश्य जीविकोपार्जन हो गया है।

१४१. पाप वही है जिसके परिणाम में अपना तथा दूसरे का अहित हो, पुण्य वही है जिसके परिणाम में अपना तथा दूसरों का हित हो।

१४२. मन में दुर्भाव उत्पन्न होते ही अशान्ति हो जाती है तथा सद्भाव होते ही शान्ति होने लगती है।

१४३. हृदय के भाव छह बातों से परिलक्षित होते हैं – वचन, बुद्धि, स्वभाव, चारित्र, आचार और व्यवहार।

१४४. बेड़ी चाहे लोहे की हो या सोने की – बन्धन कारिणी तो दोनों ही हैं, अत: शुभाशुभ सभी कर्मों का क्षय होने पर ही मुक्ति होती है।

१४५. कर्मक्षय तो ज्ञानमयी अनाशक्ति से ही होता है – कर्म से, संतति उत्पन्न करने से या धन से मुक्ति नहीं होती – वह तो आत्म ज्ञान से ही होती है।

१४६. स्व का स्वरूप समझिये – आध्यात्मिक गुरू के निर्देशन में धार्मिक ग्रन्थों का अनुशीलन कीजिये–श्रवण–मनन–के लिये कुछ समय निकालिये।

१४७. जप स्मरण तत्व चर्चा करने से ज्ञान – ध्यान की सिद्धि होती है, उत्तम आचरण स्वत: होने लग जाता है।

१४८. जीवन को सुखमय मधुर बनाइये, इसके लिये दूसरों के अनुकूल समभाव में रहिये, थोड़ी से नम्रता, थोड़ा सा धैर्य, थोड़ी सी उदारता – दयालुता – असहायों के प्रति करूणा और त्याग कीजिये।

१४९. यह दु:ख तो मेरे भाग्य दोष से मिला है अपने किये का फल सबको भोगना पड़ता है, यह चिंतन ही समता में रखता है।

१५०. छलछद्म – पाखंड वृत्ति द्वारा दूसरे को ठगने वाला समाज का कलंक होता है।

१५१. चारित्र की भित्ति पर ही अध्यात्म का भव्य भवन खड़ा किया जा सकता है। चारित्रहीन व्यक्ति अध्यात्म का रसास्वादन कभी नहीं कर सकता है।

१५२.क्रोध – अन्धा होता है, इससे प्रीति नष्ट होती है। अभिमान –बहरा होता है, इससे विनयशीलता नष्ट होती है। माया– गूंगी होती है, इससे मित्रता नष्ट होती है। लोभ – बहरा होता है यह सब कुछ नष्ट कर देता है।

१५३.कबिरा सोई पीर है, जो जाने पर पीर।
जो पर पीर न जानई, सो काफिर बेपीर॥

१५४.दुराचारी मनुष्य ही राक्षस होता है।
बाढ़े खल बहु चोर जुआरा, जे लंपट पर धन परदारा।
मानहि मातु पिता नहीं देवा, साधुन्ह से करवाबहि सेवा।
जिन्हके यह आचरन भवानी,ते जानहु निशिचर सब प्राणी॥

१५५.सत्व गुण से – ज्ञान उत्पन्न होता है और मनुष्य ऊ पर को उठता है। रजोगुण से लोभ राग पैदा होता है, तमो गुण से प्रमाद, मोह, अज्ञान पैदा होते हैं और पतन की ओर ले जाते हैं।

१५६.पानी बाढ़े नाव में, घर में बाढ़े दाम।
दोनों हाथ उलीचिये, यही सयानो काम॥

१५७.तीन सजावत देश को, सती संत और शूर।
तीन लजावत देश को, कपटी कायर कूर॥

१५८.ज्ञान का अभिमान महान अहित कर है।

१५९.केवल अपने सुखोपभोग के लिये जीने वाला व्यक्ति पाप की जिन्दगी जीता है तथा निन्दनीय है।

१६०.जिसकी इन्द्रियां नियंत्रित हैं उसी की बुद्धि स्थिर है।

१६१.मानसिक व्यभिचार सबसे बड़ा पाप है।

१६२.जहां तर्क है वहां विश्वास नहीं है।

१६३.किसी के प्रति श्रद्धा तभी उत्पन्न होती है जब उसमे विश्वास हो जाये।

१६४.अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम।
दास मलूका कह गये, सबके दाता राम॥

१६५.लाख करो तदवीर, तो क्या होता है।
वही होता है, जो मंजूरे खुदा होता है॥

१६६.अपने जीवन को सदाचारी सुखमय बनाने हेतु चेतावनी–
(१) अपने भोजन पर नियन्त्रण रखें।
(२) सज्जन पुरूषों के पास बैठें, सत्संग करें।
(३) अश्लील साहित्य कभी न पढ़ें।

१६७.जो कच्ची सामग्री होती है वह तो जो होती है वही होती है, उसमें से क्या बनाना है, यह बात निर्माता पर निर्भर करती है।

१६८.मनुष्य जितना असत् को जानने और त्यागने में स्वतंत्र है उतना किसी विशिष्ट कर्तव्य का निर्णय करने में समर्थ नहीं है।

१६९.साधक को चाहिये कि वह अपने को कभी भोगी या संसारी व्यक्ति न समझे – उसमें सदा यह जागृति रहनी चाहिये कि मैं साधक हूँ।

१७०.मनुष्य सांसारिक वस्तु – व्यक्ति से जितना अपना सम्बन्ध मानता है उतना ही वह पराधीन हो जाता है।

१७१.समय, समझ, सामग्री और सामर्थ्य – इन चारों को अपने में लगाना इनका सदुपयोग है, पर में लगाना दुरूपयोग है।

१७२. मनुष्य जन्म सब जन्मों का अन्तिम जन्म है, इस जन्म में संसार से सदा के लिये मुक्त होने का मौका मिला है इस वास्ते इस मौके को हाथ से नहीं गंवाना चाहिये।

१७३. शुद्ध स्वात्मानुभूति सम्यग्दर्शन है और भेद विज्ञान उसकी जड़ है।

१७४. प्रत्येक जीव अपने परिणामों के विकारों के कारण पापी है।

१७५. जब तक आत्मा अपने परम पुरूषार्थ को निज बल से प्रकट कर अनादि कालीन कर्म निमित्त जन्य विभावों और विकल्पों से अपने को नहीं निकालता तब तक इस संसार रूपी गहन जंगल में नाना दु:खों की परम्परा को प्राप्त होता है।

१७६. आत्मा में काल लब्धि के वश सम्यग्सद्गुरू के उपदेश निमित्त से मिथ्यात्वादि प्रकृतियों के उपशम क्षय या क्षयोपशम से जब सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति हुई तभी स्व-पर भेद विज्ञान होने से आत्मा ने अपने स्वरूप को पहिचाना - यही ज्ञान ज्योति या चैतन्य ज्योति है।

१७७. मोक्ष मार्ग में स्थित वे हैं जो सम्यग्दृष्टि भेद विज्ञानी हैं। जिन्हें सम्यग्चारित्र के पालन करने की चटपटी है।

१७८. जितने अंश में ज्ञानी है उतने अंश तो अबन्धक ही है और जितने सूक्ष्म अंश में उसे राग होता है उतना बन्ध भी होता है।

१७९. आत्म प्रकाश जिसका जग गया है वह भूलकर भी

पर में नहीं रमता।

१८०. हे सम्यग्दृष्टि ज्ञानी जीव - निरन्तर ही अपने ज्ञान स्वभाव में रमण करते हुए रहो।

१८१. भोगोपभोग स्वेच्छापूर्वक भोगते रहो और तुम्हारे कर्म बन्ध न हो यह कदापि नहीं होता - यह तुम्हारी स्वेच्छाचारिता का कार्य है, जो दुर्गति ले जायेगा।

१८२. अपने उपयोग को अपने स्वरूप में स्थिर करना ही सबसे बड़ा-कड़ा पुरूषार्थ है जो कि अभ्यास साध्य है।

१८३. अपने स्वभाव में रमण करना तथा रागादि रूप परिणमन करना यह दोनों कार्य एक साथ नहीं होते।

१८४. उपदेश शुद्ध सार का सार इतना ही है कि स्वाश्रय करो, ज्ञान स्वभाव में रहो, पराश्रय छोड़ो।

१८५. जितना संसार का व्यवहार है वह पराश्रय से होता है। पराश्रय के त्याग का उपदेश ही परमार्थ का उपदेश है।

१८६. यदि बुद्धि पूर्वक रागादि का त्याग करना चाहते हो तो द्रव्य परिग्रह का परित्याग अनिवार्य है।

१८७. जिन्हें वीतराग चारित्र होगा - उन्हें पूर्व में बाह्य त्याग रूप व्रतादि अवश्य होंगे - बिना महाव्रतादि की भूमिका के वीतराग चारित्र नहीं होता।

१८८. सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का होना - पुरूषार्थ का जागना है, चारित्र धारण करना उस पुरूषार्थ का करना है।

१८९. आत्म स्वभाव तथा कर्म स्वभाव और उसके निमित्त से होने वाले अपने विभाव का परिज्ञान ही सबसे

कठिन कार्य है।

११०. जो वस्तु पराई है, उसे ललचाई दृष्टि से देखना भी अपराध है – ग्रहण तो अपराध है ही।

१११. जो अपने हित के मार्ग में अपूर्ण है, वह अभी क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषायों के भार से संयुक्त है, ऐसा गृहस्थ आत्मश्रद्धानी या आत्मज्ञानी हो पर आत्मनिष्ठ नहीं हो सकता।

११२. वस्त्र, देह की तरह जन्म से साथ नहीं आता, वह बुद्धि पूर्वक ग्रहण किया जाता है। बुद्धि पूर्वक किसी भी वस्तु का ग्रहण उस वस्तु के प्रति आकर्षण या राग के बिना संभव नहीं।

११३. तन का नग्न मुनि नहीं होता – मन का नग्न मुनि होता है और मन की नग्नता, समस्त मानसिक विकारों से रहित होने पर ही होती है।

११४. रागादि विकारी भावों का बन्धन ही बन्धन है और उनका छूटना ही मोक्ष है।

११५. तत्व ज्ञानी को किसी पदार्थ में राग – द्वेष की उत्पत्ति न होना, इसे ही सम्यग्चारित्र कहते हैं।

११६. ज्ञानी को चाहिये कि वस्तु स्वभाव को समझकर ज्ञान भाव में रहे – रागादि न करे।

११७. अपने स्वभाव में स्थिति ही निरपराध निर्बन्ध है।

११८. तत्व का सार – चर्चाओं का तथा अपने दुष्ट संकल्प–विकल्पों का परित्याग करो।

११९. सम्पूर्ण संकल्प – विकल्प तथा वितण्डावाद छोड़कर एक मात्र स्वयं शुद्धात्मा का अनुभव करो, वही तुम्हारा परम तत्व या परमात्मा है।

२००. शुद्धोपयोग दशा ही वह साधक दशा है, जो आत्मा को पवित्र बनाती तथा पूर्ण सिद्धि प्रदान करती है।

२०१. जो जीव अनेकान्त स्वरूप जिनवाणी के अभ्यास से उत्पन्न सम्यग्ज्ञान द्वारा केवलज्ञान स्वरूप अरिहन्त पद तथा सर्वकर्मों से रहित सिद्ध परमपद पाता है,वही भव्य है।

२०२. भगवान जिनेन्द्र की अनेकान्त मयी वाणी का श्रवण कर मुझे शुद्धात्मा की महिमा का प्रकाश हुआ है, अब मुझे इस चर्चा से क्या लाभ – कि बंध कैसे होता है और मोक्ष कैसे होता है। परन्तु अब स्वभाव का सम्यग्बोध होने पर विज्ञान घन स्वभाव में मग्न रहना ही – ज्ञानानन्द सहजानन्द सार्थक है।

! सद्गुरू की महिमा !

१. गुरूदेव दिखलाते सदा, सन्मार्ग की ही गैल है।
जिससे कि गल जाती सभी,अज्ञान की विषबेल है॥
मोहान्ध ऐसे ज्ञान कुन्जों, से न नाता जोड़ता।
जड़ पत्थरों के ही निकट, वह शीश अपना फोड़ता॥

२. जिनमें गुंथे तीर्थंकरों के, रे अमोलक बैन हैं।
जिनमें कि रत्नत्रय चमकते, सूर्य से दिन रैन हैं॥
जो मोक्ष का उपदेश दें, वे ही कि सच्चे शास्त्र हैं।
ये शास्त्र पर उनको न भाते, जो कुगति के पात्र हैं॥

३. कहते हैं जिन तारण स्वामी, सुन लो सारे प्राणी।
मैंने वह ही व्यक्त किया है, कहती जो जिन वाणी॥
कट जाती जिस परम ज्ञान से, कर्म बली की फांसी।
मैंने तुमको भेंट किया है, ज्ञान वही अविनाशी॥

ज्ञायक की स्थिति

जिसको साक्षी होना है और सत्य को जानना है उसे समस्त विचारों को समान विचार समझना होगा, न कोई अच्छा है न कोई बुरा है, क्योंकि जैसे ही हमने तय किया कि कुछ अच्छा है – कुछ बुरा है, तो फिर साक्षी नहीं रह जायेंगे ।

साक्षी होने के लिए जरूरी है कि हम निष्पक्ष हों, हमारी कोई धारणा न हो, हमारी कोई कल्पना न हो, हम कुछ भी आरोपित करना न चाहते हों ।

जब तक विचारों के प्रति शुभ – अशुभ के निर्णय की वृत्ति होती है, यह वृत्ति चित्त के मौन और शून्य होने में बाधा बन जाती है ।

वीतराग दर्शन के अतिरिक्त उनसे मुक्ति का कोई मार्ग नहीं है ।

चेतना हमेशा परिस्थितियों के बाहर है – जिस दिन इस पृथकता का बोध होगा, जिस दिन जीवन के बीच इस साक्षी भाव का उदय होगा कि मैं तो दूर खड़ा रह जाता हूँ। धारायें आती हैं और बह जाती हैं, हवाएं आती हैं और गुजर जाती हैं । धूप आती है, शीत आती है, वर्षा आती है, गर्मी आती है और मैं दूर खड़ा रह जाता हूँ मैं पृथक् अलग खड़ा रह जाता हूँ, कुछ भी मुझे छूता नहीं, कुछ भी मेरे प्राणों का अतिक्रांत नहीं करता, कुछ भी मेरे भीतर बदलाहट नहीं करता । मैं तो वहीं रह जाता हूँ । चीजें आती हैं और बदल जाती हैं । जिस दिन यह एक क्रांतिकारी परिवर्तन अन्तर में प्रगट होगा, उसी क्षण से ज्ञायक की स्थिति हो जायेगी । ज्ञायक रहना ही जीवन का वास्तविक आनन्द है । साक्षी रहना ही जीवन जीने की कला है ।

आध्यात्मिक भजन

भजन – १

गुरू बाबा को जिसने ध्याया, उसका ही उद्धार हुआ ।
आत्म ध्यान उर धारा जिसने, उसका बेड़ा पार हुआ ॥
वेदी वाले की भक्ति करो, ध्यान चरणों में उनके धरो,
जय हो जिन तारण – तरण ४

१. वीर श्री के दुलारे थे तारण – तरण ।
बाल पन में ही ली थी धरम की शरण ॥
मोह को तज दिया, संयम धारण किया,
मार्ग अपनाया वैराग्य का २
हो विरक्त जब दीक्षा धारी, जग में जय जयकार हुआ ...२
आत्म ध्यान उर धारा जिसने .....

२. वेदी वाले का जग में बड़ा नाम है ।
चांद सेमर निसई सूखा पुष्पधाम है ॥
ज्ञानी गुरूवर मेरे, ध्यानी गुरूवर मेरे,
गीत गाऊं मैं नित आपके २
धन्य हो गई भारत भूमि, गुरू का जब अवतार हुआ २
आत्म ध्यान उर धारा जिसने .....

३. जग में फैले अहिंसा की शुभ देशना ।
सारी धरती कुटुम्ब है यही भावना ॥
ईर्ष्या करना नहीं, मन हो करूणा मयी,
ऐसी शिक्षा है गुरू तार की....२
बसंत हृदय में विश्व प्रेम धर, जो निर्मल अविकार हुआ ।
आत्म ध्यान उर धारा जिसने .....

भजन – २

सुनो त्रिलोकी नाथ कैसे हो रहे हो ।
निज को लख लो आज समय क्यों खो रहे हो ॥

१. अनुभव के बिना रे भाई, यह समय लक्ष सम जाई ।
सद्गुरू तुमको समझाई, फिर भी मति क्यों भरमाई ॥
देख क्या हालत है, कर्म बंध कर रहे,
पाप ही बो रहे हो..... सुनो त्रिलोकीनाथ.....

२. देखो तुम अरस अरूपी, यह जड़ पुद्गल है रूपी ।
तुम ज्ञानमयी शुद्धातम, हो परमानंद स्वरूपी ॥
जरा निज को तो लखो, तज दो सब अज्ञान,
दुखी क्यों हो रहे हो..... सुनो त्रिलोकी नाथ .....

३. अब अपनी ओर निहारो, जग में न कोई तुम्हारो ।
नित भेदज्ञान उर धारो, पुरूषार्थ करो करारो ॥
देख लो ज्ञायक हो, ज्ञाता दृष्टा रहो,
कर्म क्यों ढो रहे हो... सुनो त्रिलोकी नाथ .....

४. यहसमय नहीं फिर मिलना,चेतो अब कमलवत् खिलना॥
निशिवासर आतम ध्याओ, पर में न अब भरमाओ ॥
चेत लो मौका है, वीतराग हो जाओ,
उठो क्यों सो रहे हो .....
सुनो त्रिलोकी नाथ कैसे हो रहे हो ।
निज को लख लो आज समय क्यों खो रहे हो ॥

भजन – ३

रे मन ! मूरख जनम गमायो ।
कभी न आया सद्गुरू शरणा, ना तैं प्रभु गुण गायो ॥

१. यह संसार हाट बनिये की, सब कोई सौदे आयो ।
चातुर माल चौगुना कीना, मूरख मूल ठगायो ॥
रे मन.....

२. यह संसार फूल सेमर को, शोभा देख लुभायो ।
चाखन लाग्यो रूई उड़ गयी, सिर धुन-धुन पछतायो ॥
रे मन.....

भजन – ४

सिद्ध स्वरूपी शुद्धात्मा, आज मेरे नैनों में झूले ।
नैनों में झूले, मेरे अंगना में झूले,
सिद्ध स्वरूपी शुद्धात्मा, आज मेरे नैनों में झूले ॥

१. शुद्धं प्रकाशं शुद्धात्म तत्वं ।
समस्त संकल्प विकल्प मुक्तं ॥
रत्नत्रय मयी परमात्मा, आज मेरे नैनों में झूले.....

२. एक अखंड अभेद अविनाशी ।
चैतन्य ज्योति ज्ञायक स्वभावी ॥
ध्रुव तत्व भगवान आत्मा, आज मेरे नैनों में झूले.....

३. ज्ञानानंद स्वभावी है अलख निरंजन ।
अरहंत सर्वज्ञ भव भय भंजन ॥
ब्रह्मानंद परमात्मा, आज मेरे नैनों में झूले.....

भजन – ५

डूब रही रे, नैया भंवरिया में डूब रही रे ॥

१. गहरी है नदिया भंवर भारी ।
कैसे तिरें जा समझ न परी ॥
डूब रही रे, नैया .....

२. पापों की नैया वजन भारी ।
कर्मों ने कर लइ जा असवारी ॥
डूब रही रे, नैया .....

३. मान कषाय तो खूबई करें ।
चारई कषाय तो खूबई करें,
धीरज धरम नहीं मन में धरें ॥
डूब रही रे, नैया .....

४. श्रद्धा बिना नहीं कोई उपाय ।
जासे जो जीवन सफल हो जाये ॥
डूब रही रे, नैया .....

५. जीना जगत में दिन दो चार ।
हो जा भगत् तू भवदधि पार ॥
डूब रही रे, नैया .....

देखो नैया भंवरिया में डूब रही रे, नैया .....

भजन – ६

लगाले प्रभु से लगन, लगाले प्रभु से लगन ।
नाच रे मयूर मन, होकर के मगन ॥

१. गुरु तारण की देशना, सुन लो चतुर सुजान ।
तन से न्यारा आत्मा, अपना है भगवान...लगा ले...

२. हृदया भीतर आरसी, मुख देखा नहिं जाए ।
मुख तबही तुम देखियो,जब दिलका धोखा जाए...लगा ले...

३. काजल केरी कोठरी, तैसा ये संसार ।
ज्ञानी की बलिहारी है, पैठि के निकसन हार...लगा ले...

४. मन की दुविधा न मिटे, मुक्ति कहां से होय ।
कौड़ी बदले रत्न सा, जन्म चला नर खोय...लगा ले...

५. तू है चेतन आत्मा, विष्णु, बुद्ध जिन राम ।
ब्रह्मानंद में लीन हो, जाये मुक्ति धाम...लगा ले...

भजन – ७

ओ सोने वाले अब तो जरा जाग रे ।
ये है मुक्ति मारग इसमें लाग रे ॥

१. काल अनादि मोह में सोया, अपने को नहीं जाना ।
रागद्वेष और कर्म जाल का, बुना है ताना – बाना ॥
यह नर जन्म पाया है, सौभाग्य रे, ओ सोने वाले ....

२. तू है ब्रह्मस्वरूपी चेतन, जड़ शरीर से न्यारा ।
अहंकार ममकार छोड़ दे, नश्वर है जग सारा ॥
यह जग तन भोगों से, धर वैराग्य रे, ओ सोने वाले....

३. भेदज्ञान तत्व निर्णय द्वारा, दृढ़ता उर में धर ले ।
ब्रह्मानंद मयी शुद्धातम का, आश्रय अब कर ले ॥
तू आ जा अपने में, पर को त्याग रे, ओ सोने वाले....

भजन – ८

काये देखो रे शरीर, काये देखो रे शरीर।
तन तो है धूरा को ढेर, नश जैहै वीर ॥

१. राजा महाराजा चक्री भी, जग में न रह पाये ।
जिसका जन्म हुआ है, उसका अंत एक दिन आये ॥
जोगी राजा रंक फकीर, जोगी राजा रंक फकीर,
तन तो है धूरा...

२. चक्री सनत्कुमार सरीखे, तन को बचा न पाये ।
कोढ़ हुआ तब नाशवान लख, आतम ध्यान लगाये ॥
अब तो मन में धर लो धीर, अब तो मन में धरलो धीर,
तन तो है धूरा....

३. नव द्वारों का है यह पिंजरा, चेतन इसमें रहता ।
उड़ जाये तो क्या अचरज है, अचरज कैसे रहता ॥
भैया बात बड़ी गंभीर, भैया बात बड़ी गंभीर,
तन तो है धूरा ....

४. महा अपावन सप्त धातुमय, जाल नसों का फैला ।
चेतन राजा क्यों ढो रहे हो, यह घूरे का थैला ॥
सह रहे काये मुफत में पीर,सह रहे काये मुफत में पीर,
तन तो है धूरा .....

५. कैसे खिलें बसंत बहारें, लग रहे हो तुम पर में ।
कलरंजन का बंधन तोड़ो, चलो चलें निज घर में ॥
पा लो भव सागर का तीर, पा लो भव सागर का तीर,
तन तो है धूरा ....

भजन –९

दिन रैन रखो निज ध्यान, चिदानंद तुम चिन्मय भगवान ॥

१. जग में अपना कोई नहीं है, क्यों हो रहे हैरान ।
मोह राग अरू चाह कामना, यह सब दुःख की खान॥
चिदानंद तुम ....

२. तू है चेतन सबसे न्यारा, स्व संवेद्य प्रमाण ।
परमानंद विलासी ज्ञायक, स्वयं है सिद्ध समान ॥
चिदानंद तुम ....

३. दुख का कारण एक यही है, भूले ज्ञान–विज्ञान ।
इस शरीर से तुम हो न्यारे, कर लो निज पहिचान॥
चिदानंद तुम ....

४. एक अखंड निरंजन निर्मल, तुम हो ममल महान ।
ब्रह्मानंद में लीन रहो नित, हो जाये कल्याण ॥
चिदानंद तुम ....

भजन –१०

मन की कैसे प्यास बुझै ।
पर द्रव्यों का अपना माने, माया में उरझै ॥

१. जीव ब्रह्म का भेद न जाने, विषय मार्ग सूझै ।
धन संग्रह की ममता करके, अपना हित समुझै... मन की...

२. तन में आपा बुद्धि राखै, पापों में जूझै ।
विषयों का खारा जल पीकर, अमृत रस समुझै... मन की...

३. इच्छा तृष्णा की खाई में, जग तृणवत् बूझै ।
अंतर ब्रह्मानंद सिंधु का, अनुभव न उमझै...मन की...

४. सत्य असत्य न समझे पल भर, क्या समझाऊं तुझै ।
मोह कामना राग भाव से, जब तक न सुरझै...मन की...

भजन – ११

हे भवियन ध्याओ आतमराम ।
कौन जानता कब हो जाए, इस जीवन की शाम ॥

१. जग में अपना कुछ भी नहीं है, परिजन तन या दाम ।
आयु अंत पर सब छूटेगा, जल जायेगी चाम ॥
हे भवियन ....

२. यह संसार दुखों की अटवी, यहां नहीं आराम ।
शुद्धातम की करो साधना, रहो सदा निष्काम ॥
हे भवियन ....

३. मोह राग को छोड़ के चेतन, निज में करो विश्राम ।
शुद्ध–बुद्ध अविनाशी हो तुम, शुद्धातम सुख धाम ॥
हे भवियन ....

४. सिद्ध स्वरूपी ममल स्वभावी, आनंदमयी ध्रुव धाम ।
ब्रह्मानंद में लीन रहो नित, जग से मिले विराम ॥
हे भवियन ....

भजन – १२

मन की ऐसे प्यास बुझै ।
जड़ चेतन का भेद पिछाने, सत्स्वरूप समुझै ॥

१. तन में आपा बुद्धि तजकर, ध्रुव स्वभाव बूझै ।
विषय कषाय विकार भाव में, बिल्कुल न उरझै ....मन की ...

२. इच्छा तृष्णा गहरी खाई, मन से न पूजै ।
ज्ञान डोरि से बांधो मन को, सत्य तभी सूझै ... मन की ...

३. भेदज्ञान तत्व निर्णय द्वारा, द्रव्य दृष्टि उपजै ।
वस्तु स्वरूप को नीर क्षीरवत्, ज्यों का त्यों समुझै..मन की ...

४. पर पर्यायें नाशवान हैं, उनसे न जूझै ।
अंतर ब्रह्मानंद मगन हो, माया से सुरझै .....मन की ...

भजन – १३

जय तारण तरण सदा सबसे ही बोलिये ।
जय तारण तरण बोल अपना मौन खोलिये ॥

१. श्री जिनेन्द्र वीतराग, जग के सिरताज हैं ।
आप तिरें पर तारें, सद्गुरू जहाज हैं ॥
धर्म स्वयं का स्वभाव, अपने में डोलिये ....

२. निज शुद्धातम स्वरूप, जग तारण हार है ।
यही समयसार शुद्ध, चेतन अविकार है ॥
जाग जाओ चेतन, अनादि काल सो लिये ...

३. देव हैं तारण तरण, गुरू भी तारण तरण ।
धर्म है तारण तरण, निजात्मा तारण तरण ॥
भेदज्ञान करके अब, हृदय के द्वार खोलिये ...

४. इसकी महिमा अपार, गणधर ने गाई है ।
गुरू तारण तरण ने, कथी कही दरसाई है ॥
ब्रह्मानंद अनुभव से, अपने में तौलिये .....

भजन – १४

आतम है – आतम है, निज आतम देव परमातम है ॥

१. अलख निरंजन शिवपुर वासी ।
ध्रुव तत्व है ममल स्वभावी...आतम है...

२. एक अखण्ड सदा अविनाशी ।
चेतन अमल सहज सुख राशि ...आतम है...

३. ज्ञानानंद स्वभावी आतम ।
परम ब्रह्म है निज शुद्धातम ...आतम है...

४. ध्रुव धाम में रहने वाला ।
अहं ब्रह्मास्मि कहने वाला ...आतम है...

५. सच्चिदानंद घन अरस अरूपी ।
केवलज्ञानी सिद्ध स्वरूपी ...आतम है...

इति

गुरू – भक्ति

आओ हम सब मिलकर गायें, गुरूवाणी की गाथायें ।
है अनन्त उपकार गुरू का, किस विधि उसे चुका पायें ।।
वन्दे तारणम् जय जय वन्दे तारणम् ।।

चौदह ग्रंथ महासागर हैं, स्वानुभूति से भरे हुए ।
उन्हें समझना लक्ष्य हमारा, हम भक्ति से भरे हुए ।।
गुरू वाणी का आश्रय लेकर, हम शुद्धातम को ध्यायें,
है अनन्त .....

कैसा विषम समय आया था, जब गुरूवर ने जन्म लिया ।
आडम्बर के तूफानों ने, सत्य धर्म को भुला दिया ।।
तब गुरूवर ने दीप जलाया, जिससे जीव संभल जायें,
है अनन्त .....

अमृतमय गुरू की वाणी है, हम सब अमृत पान करें।
जन्म जरा भव रोग निवारें, सदा धर्म का ध्यान धरें ।।
हम अरिहंत सिद्ध बन जायें, यही भावना नित भायें,
है अनन्त .....

शुद्ध स्वभाव धर्म है अपना, पहले यही समझना है।
क्रियाकाण्ड में धर्म नहीं है, ब्रह्मानंद में रहना है।।
जागो जागो हे जग जीवो, सत्य सभी को बतलायें,
है अनन्त .....

❊ जिनवाणी स्तुति ❊

जिनवाणी को नमन करो, यह वाणी है भगवान की ।
वंदे तारणम् जय जय वंदे तारणम् ।।

स्याद्वाद की धारा बहती, अनेकांत की माता है ,
मद् मिथ्यात्व कषायें गलतीं, राग द्वेष गल जाता है ।
पढ़ने से है ज्ञान जागता, पालन से मुक्ति मिलती ,
जड़ चेतन का ज्ञान हो इससे, कर्मों की शक्ति हिलती ।।
इस वाणी का मनन करो, यह वाणी है कल्याण की ।।१।।
वंदे तारणम्.....

इसके पूत–सपूत अनेकों, कुन्द–कुन्द गुरू तारण हैं,
खुद भी तरे अनेकों तारे, तरने वालों के कारण हैं ।
महावीर की वाणी है, गुरू गौतम ने इसको धारी,
सत्य धर्म का पाठ पढ़ाती, भव्यों की है हितकारी ।।
सब मिल करके नमन करो, यह वाणी केवल ज्ञान की ।।२।।
वंदे तारणम्.....

❊ आरती ❊

ॐ जय आतम देवा, प्रभु शुद्धातम देवा ।
तुम्हरे मनन करे से निशदिन, मिटते दुःख छेवा ।।टेक।।

अगम अगोचर परम ब्रम्ह तुम, शिवपुर के वासी ।
शुद्ध–बुद्ध हो नित्य निरंजन, शाश्वत अविनाशी ।।१।।
ॐ जय.....

विष्णु बुद्ध, महावीर प्रभु तुम, रत्नत्रय धारी ।
वीतराग सर्वज्ञ हितंकर, जग के सुखकारी ।।२।।
ॐ जय.....

ज्ञानानंद स्वभावी हो तुम, निर्विकल्प ज्ञाता ।
तारण–तरण जिनेश्वर, परमानंद दाता ।।३।।
ॐ जय.....

❊ इति ❊